खंड 3
संवृद्धि एवं वितरण

खंड 3 संवृद्धि एवं वितरण

खंड 3 संवृद्धि एवं वितरण पर है। इसमें तीन इकाइयां हैं। ये क्रमशः गरीबी, विषमता और रोज़गार एवं बेरोज़गारी विषयों पर है।

इकाई 8 गरीबी पर है। यह दशकों से हुई जनसंख्या वृद्धि से आरंभ की गई है और फिर इसमें गरीबी के पोषण, साख, बीमा, अनौपचारिक अर्थतंत्र और भेदभाव जैसे कारकों से अंतर्संबंधों की व्याख्या की गई है। फिर 1947-2010 की अवधि में अपनाए गए गरीबी निवारण उपायों पर चर्चा हुई है। अंत में 2010 के दशक में अपनाए गए नवीनतम गरीबी निवारण उपायों पर ध्यान दिया गया है।

इकाई 9 की विषय वस्तु विषमता है। यहाँ क्षैतिज एवं ऊर्द्धवमुखी विषमता अवधारणाओं की व्याख्या की गई है। फिर आय, उपयोग और पोषण के आयामों में विषमता का स्वरूप समझाया गया है। जीवन स्तर और क्षेत्रीय अपसृति के आधार पर देश के विभिन्न भागों के बीच विषमता का चित्रण किया गया है।

इकाई 10 रोज़गार एवं बेरोज़गारी पर है। प्रारंभ में ही इसमें रोज़गार, बेरोज़गारी, श्रम शक्ति भागीदारी दर और कार्यबल भागीदारी दर की संकल्पनाओं की व्याख्या की गई है। फिर देश में अपनाई गई रोज़गार नीतियों पर चर्चा की गई है। इसके बाद अर्थव्यवस्था के विशाल अनौपचारिक आधार पर असंगठित क्षेत्र की श्रमशक्ति की सामाजिक सुरक्षा आवश्यकताओं की व्याख्या की गई है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 ग़रीबी*

संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 विषय प्रवेश

8.2 गरीबी का मापन

- 8.2.1 मापन विधियाँ
- 8.2.2 भारत में गरीबी मापन

8.3 गरीबी से जुड़े आयाम

- 8.3.1 पोषण
- 8.3.2 ऋण
- 8.3.3 बीमा
- 8.3.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था
- 8.3.5 भेदभाव

8.4 गरीबी निवारण हेतु किये गये उपाय : वर्ष 2010 तक

- 8.4.1 कृषिक संवृद्धि
- 8.4.2 मध्याह्न भोजन योजना
- 8.4.3 मनरेगा (MNREGA)

8.5 गरीबी निवारण के अभिनव उपाय : वर्ष 2010-उपरांत

- 8.5.1 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013
- 8.5.2 प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण
- 8.5.3 सबके लिए आवास, 2016

8.6 सार-संक्षेप

8.7 शब्दावली

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि:

- गरीबी और गरीबी की रेखा संबंधी संकल्पनाओं को परिभाषित कर सकें;
- गरीबी मापन की विधियों पर चर्चा कर सकें;
- गरीबी मापन हेतु भारत में अपनाए गए दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकें;
- गरीबी निवारण को प्रभावित करते कारकों के साथ उसके सहलग्नता का विश्लेषण कर सकें;
- वर्ष 2010 तक भारत में गरीबी घटाने हेतु शुरू किए गए महत्त्वपूर्ण उपायों का वर्णन कर सकें; तथा

* डॉ. स्मृतिकन घोष, सहायक आचार्य, स्कॉटिश कॉलेज, कोलकाता

- वर्ष 2010-उपरांत वर्षों के दौरान भारत में गरीबी से संघर्ष करने हेतु शुरू किए गए उपायों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें।

8.1 विषय प्रवेश

वर्ष 2015 में, विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के एक अनुमानानुसार, विश्व में 87.2 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे थे, जिनमें से 18 करोड़ भारत में रह रहे थे। इसका अर्थ है कि भारत में गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों की प्रतिशतता 20 प्रतिशत के आस-पास थी। गरीबी को सक्रामक दुर्लभता या अपर्याप्तता की संज्ञा दी जा सकती है। यह ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति के पास भौतिक सम्पत्ति या धन की 'न्यूनतम' राशि का अभाव होता है। गरीबी निरपेक्ष अथवा सापेक्ष हो सकती है। निरपेक्ष गरीबी का अर्थ है– रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने हेतु आवश्यक साधनों का अभाव। सापेक्ष गरीबी में शेष समाज की तुलना में व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को भी ध्यान में रखा जाता है। सापेक्ष अर्थ में, विचार किए जाने पर, यह एक बहुफलकित संकल्पना दृष्टिगत होती है। इस दृष्टिकोण से, केवल आय पर आधारित गरीबी का कोई भी मापदंड उसके सभी आयामों का प्रग्रहण नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, गरीबी के मूल मापदंड जानने के अलावा, हमें गरीबी की एक बहुआयामी संकल्पना की भी आवश्यकता होगी। भारत में, गरीबी अनुमान गरीबी रेखा संबंधी संकल्पना के आधार पर दो विधियों से विकसित किए गए हैं– एक मूल आवश्यकताएँ क्रय करने हेतु वांछित आय को सामने रखकर (आय दृष्टिकोण) तथा दूसरा, परिवारों द्वारा किए गए वास्तविक उपभोग को ध्यान में रखकर (उपभोग दृष्टिकोण)। गरीबी रेखा एक न्यूनतम जीवन-स्तर दर्शाती है जो कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इस स्तर से नीचे आने वाले लोगों को गरीबी में रह रहे लोगों में गिना जाता है। आय दृष्टिकोण में, इसे मूलभूत आवश्यकताएँ क्रय करने हेतु प्रतिदिन वांछित रुपयों की संख्या के रूप में बताया जाता है।

8.2 गरीबी का मापन

गरीबी के विभिन्न मापदंड हैं। इस भाग में, हम गरीबी मापन की कुछ महत्त्वपूर्ण विधियों का अध्ययन करेंगे।

8.2.1 मापन विधियाँ

हम व्यक्ति गणना अनुपात (Head Count Ratio) से आरंभ करेंगे, जो परिकलन में सरल है, और इसलिए व्यापक प्रयोग में है, किंतु यह दो तुल्य समूहों के बीच गरीबी की सापेक्ष गहनता ज्ञात करने में हमारी कोई मदद नहीं करता। एक मापदंड, जिसे गरीबी अंतर सूचकांक (Poverty Gap Index) कहा जाता है, दो क्षेत्रों अथवा समूहों के बीच गरीबी अर्थात् दरिद्रता की गहनता संबंधी अवधारणा प्रस्तुत करता है। तथापि, यह परवर्ती विधि भी गरीबी की प्रचंडता का कोई मापदंड प्रदान नहीं करती। यह अभाव वर्गित गरीबी अंतर अनुपात (Squared Poverty Gap Ratio) विधि से दूर किया जाता है। इस भाग में, स्वयं को गरीबी के उक्त मापदंडों से अवगत कराने के अलावा, हम दो अन्य मापदंडों के विषय में भी सीखेंगे, जिनमें एक हैरॉल्ड वॉट्स (1964) द्वारा और दूसरा अमर्त्य सेन (1976) द्वारा विकसित किया गया है और दोनों को सैद्धांतिक गुणधर्म संतुष्ट करने वालों के रूप में जाना जाता है।

जनगणना अनुपात (H) : इसे कुल जनसंख्या की प्रतिशतता के रूप में परिभाषित किया जाता है अर्थात् इसे $H = \frac{q}{n}$ के रूप में परिभाषित किया जाता है, जहाँ q निर्धन जनसंख्या है और n कुल जनसंख्या। उदाहरण के लिए, किसी क्षेत्र में 1000 लोग रहते हैं जिनमें 430 निर्धन हैं। पूर्व-परिभाषित गरीबी रेखा के अनुसार, तब H = 430/1000 = 0.43. तद्नुसार, प्रतिशत के रूप में, अभिव्यक्ति किए जाने पर, इसका अर्थ होता– इस क्षेत्र में 43 प्रतिशत लोग निर्धन हैं। इस मापन में, जबकि गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का अनुपात ज्ञात किया जा सकता है, हम गरीबी का विस्तार (अथवा गहनता) ज्ञात नहीं कर सकते हैं अर्थात् ये 430 लोग कितने ग़रीब हैं, यह निर्धारित नहीं किया जा सकता।

गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) : गरीबी की गहनता का अध्ययन करने के लिए गरीबी अंतर अनुपात का आकलन उपयोगी होता है। इसी से ज्ञात होता है कि किस सीमा लोग, औसतन, किसी गरीबी रेखा से नीचे आते हैं। यह ऐसा सूचकांक है जो हमें यह बताता है कि अत्यंत गरीब लोग गरीबी रेखा से कितना नीचे अवस्थित हैं। उक्त सूचकांक (PGI) ऐसे लोगों पर विचार करता है जो 'शून्य' गरीबी अंतर पाने के लिए ग़ैर-निर्धन हैं। सर्वेक्षण किए गए लोगों के एक समूह पर कुल योग करने पर, अंतर अनुपात ही गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) बन जाता है। तद्नुसार, यदि Y_i किसी व्यक्ति 'i' की आय हो और गरीबी रेखा को Z के रूप में लिया जाए, तो PGI को निम्नवत् परिभाषित किया जाता है –

$$PGI = \frac{1}{N}\sum_{i=1}^{J}\left(\frac{Z-Y_i}{Z}\right) \qquad (8.1)$$

जहाँ, N सर्वेक्षण की गई कुल जनसंख्या है। तद्नुसार, यदि 100 लोग (N) हों जिनमें से $Y_1, Y_2, Y_{3,\ldots\ldots,}Y_{40}$ द्वारा इंगित उनकी अपनी-अपनी आय के साथ 40 निर्धन हों, और रु. 1000/– गरीबी रेखा मान ली जाए, तो PGI निम्नवत् आकलित किया जाएगा–

$$PGI = \frac{1}{100}\left[\left(\frac{1000-Y_1}{1000}\right) + \left(\frac{1000-Y_2}{1000}\right) + \cdots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots + \left(\frac{1000-Y_{40}}{1000}\right)\right] \qquad (8.2)$$

यह समझने के लिए कि गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) जनगणना अनुपात (H) से किस प्रकार श्रेष्ठ है, एक आनुभविक दृष्टांत पर विचार करना उपयोगी होगा। ध्यान देने की बात है कि 8 कुटुंबों के एक प्रतिदर्श हेतु गरीबी का व्यक्ति गणना अनुपात सामान्यतः अन्वेषणाधीन दोनों ही क्षेत्रों के लिए 0.375 (तालिका 8.1) आता है क्योंकि व्यक्ति गणना विधि में केवल रु. 800/– की गरीबी रेखा से नीचे आने वाले लोगों की संख्या पर ही विचार किया जाता है। तथापि, गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) के मामले में (जहाँ हम यदि $Y_i > Z$ तो G_i को '0' के बराबर और यदि $Y_i < Z$ तो $Z - Y_i$ के बराबर मानते हैं), हम देखते हैं कि इन्हीं आँकड़ों के लिए, क्षेत्र.1 हेतु PGI (0.013) , क्षेत्र-2 हेतु PGI (0.119) से कम है। तद्नुसार, PGI मान आयोजकों को यह बताने के लिए कहीं अधिक ज्ञानप्रद है कि क्षेत्र-1 की तुलना में क्षेत्र-2 में गरीबी की उच्चतर गहनता के कारण वहाँ योजनाओं को बेहतर अभिलक्षित किए जाने की आवश्यकता है। उक्त सूचकांक (PGI) की अपनी ही सीमा है क्योंकि इसके (PGI) द्वारा 'डॉल्टन का अंतरण सिद्धांत' नामक एक नियम का उल्लंघन होता है। इस सिद्धांत के अनुसार, किसी भी गरीबी रेखा से ऊपर स्थित कुटुंब से किसी गरीबी रेखा से नीचे स्थित कुटुंब को कुछ धन हस्तांतरित कर (जिसे प्रगामी हस्तांतरण कहा जाता है, अधिक प्रचण्ड क्षेत्र में PGI को नीचे लाया जाना चाहिए। इस सिद्धांत में अपेक्षित

है कि निर्धन कुटुंबों अथवा व्यक्तियों की आय-स्वरूप प्राप्तियों के बीच असमानता की कोटि के प्रति 'संवेदनशील' होना चाहिए। इस सिद्धांत की अवहेलना व्यक्ति गणना अनुपात और उक्त सूचकांक (*PGI*) दोनों द्वारा की जाती है। ऐसा इसलिए है कि उक्त सूचकांक (*PGI*) के मामले में सभी अंतर समान रूप से भारित किए जाते हैं। इस कमी को 'वर्गित गरीबी अंतर अनुपात' द्वारा दूर किया जाता है जहाँ सभी भार स्वयं गरीबी अंतरों के अनुपात में रखे जाते हैं (यथा, 'x' प्रतिशत की गरीबी अंतर 'x' प्रतिशत के बराबर भार दिया जाता है)।

तालिका 8.1 : व्यक्ति गणना अनुपात विधि

क्षेत्र	8 प्रतिदर्श कुटुंबों में प्रति व्यक्ति मासिक व्यय (रु. में)								व्यक्ति गणना अनुपात (P_0) Z = रु. 800
	1	2	3	4	5	6	7	8	
क्षेत्र-1	950	1100	1000	975	750	775	790	1400	3 / 8 = 0. 375
क्षेत्र-2	1250	1150	1400	1100	550	600	490	1200	3 / 8 = 0. 375

तालिका 8.2 : गरीबी-अंतर अनुपात विधि

क्षेत्र	8 प्रतिदर्श कुटुंबों में प्रति व्यक्ति मासिक व्यय (रु. में)								गरीबी अंतर सूचकांक (P_1)
	1	2	3	4	5	6	7	8	
क्षेत्र-1	950	1100	1000	975	750	775	790	1400	Z = **800**
$G_i = Z - Y_i$	0	0	0	0	50	25	10	0	
G_i/Z	0	0	0	0	0.0625	0.03125	0.0125	0	0.10625/8 = **0.013**
क्षेत्र-2	1250	1150	1400	1100	550	600	490	1200	
$G_i = Z - Y_i$	0	0	0	0	250	200	310	0	
G_i/Z	0	0	0	0	0.3125	0.25	0.3875	0	0.95/8 = **0.119**

नोट : यदि $(Z - Y_i) < 0$ तो G_i को 'शून्य' लिखा जाता है और अन्यथा वास्तविक अंतर।

वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SPGI) : वर्गांकित आनुपातिक गरीबी अंतर के औसत-स्वरूप परिभाषित, यह मापदंड गरीबी की प्रचंडता दर्शाता है और इसलिए 'गरीबी प्रचंडता सूचकांक' भी कहा जाता है। गरीबी अंतरों के एक भारित योगफल-स्वरूप परिभाषित, जहाँ सभी भार स्वयं गरीबी अंतरों के आनुपातिक होते हैं, यह सूचकांक निर्धन वर्ग के बीच असमानता के प्रति संवेदनशील होने के लिए सराहा जाता है। इसका अर्थ है कि 5 प्रतिशत का एक गरीबी अंतर 5 प्रतिशत का भार दिलाएगा, 60 प्रतिशत का एक गरीबी अंतर 60 प्रतिशत का भार दिलाएगा, इत्यादि। यह गरीबी अंतर सूचकांक का एक उन्नत रूप है, जिसमें सभी भार बराबर होते हैं। दूसरे शब्दों में, गरीबी अंतर को वर्गांकित कर उक्त सूचकांक (SPGI) अधिक ज़ोर उन समुक्तियों पर देता है जो महत्त्वपूर्ण रूप से गरीबी रेखा से नीचे अवस्थित होती

हैं। इस सूचकांक को तद्नुसार निम्नवत् निरूपित किया जाता है–

$$SPGI = \frac{1}{N}\sum_{i=1}^{N}\left(\frac{G_i}{z}\right)^2 \qquad (8.3)$$

जहाँ N गरीबी सर्वेक्षण में जनसमुदायों अथवा समुक्तियों की कुल संख्या है, G_i iवें व्यक्ति का गरीबी अंतर है और z गरीबी रेखा है। गरीबी की प्रचंडता (अथवा गहनता) का मापन महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि, यही गरीबी के प्रभाव पर संपूरक सूचना प्रदान करती है। इसका अर्थ है कि जबकि कुछ समूह एक उच्च गरीबी प्रभाव से ग्रस्त (यथा, अनेक सदस्य गरीबी रेखा से बिल्कुल नीचे हैं) परंतु एक निम्न गरीबी अंतर दर्शा सकते हैं। अन्य समूह एक निम्न गरीबी प्रभाव से ग्रस्त (यथा, तुलनात्मक रूप से कुछ सदस्य गरीबी रेखा से नीचे हैं) होते हुए भी एक उच्च गरीबी दर्शा सकता है (उदाहरणार्थ, गरीबों के उपभोग के अत्यंत निम्न स्तर)।

सेन का सूचकांक : प्रोफेसर ए.के. सेन (1976) ने किसी समूह के भीतर गरीबों की संख्या, गरीबी की गहनता और गरीबी का वितरण संबंधी तीनों कारकों को जोड़कर एक गरीबी सूचकांक प्रस्तुत किया। यह सूचकांक निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$P_s = P_0[1-(1-G^p)\frac{\mu^p}{z}] \qquad (8.4)$$

जहाँ P_0 व्यक्ति गणना सूचकांक है, μ^p गरीब वर्ग की औसत आय है और G^p गरीब लोगों के बीच असमानता का गिनी गुणांक है $(0 \leq G^p \leq 1)$। सेन का सूचकांक व्यक्ति गणना और गरीबी अंतर मापांकों का भारित औसत होता है। यह सूचकांक विचार किए गए पूर्व तीन मापदंडों की अपेक्षा अपनी दुष्कर संरचना के कारण मुख्यतः सैद्धांतिक चर्चा में प्रयोग किया जाता है और व्यवहार में इतना अधिक नहीं। इस सूचकांक की यह भी सीमाबद्धता है कि यह गरीबी के योगदान को विभिन्न उपसमूहों में विघटित नहीं कर सकता।

वॉट का सूचकांक : यह एक वितरण-संवेदी गरीबी मापक है जिसे निम्नवत् परिभाषित किया जाता है –

$$W = \frac{1}{N}\sum_{i=1}^{q}[log(Z) - log(Y_i)] \qquad (8.5)$$

जहाँ N आय (अथवा व्यय) के आरोही क्रम में व्यवस्थित लोगों की संख्या है, जो कि 'q' ऐसे व्यक्तियों पर प्रस्तुत की गई है जिनकी आय Y_i गरीबी रेखा Z से नीचे आती है। यह सूचकांक प्रसिद्धि पा रहा है क्योंकि यह अनेक सैद्धांतिक गुणधर्म संतुष्ट करता है। तथापि, यह सूचकांक भी प्रयोग में अभी लोकप्रिय नहीं है।

8.2.2 भारत में गरीबी मापन

प्रथम दो पंचवर्षीय योजना अवधियों में, भारत में गरीबी को एक सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन जीने में सक्षम करने हेतु न्यूनतम ऊर्जा वांछनीयता के रूप में परिभाषित किया गया था। इसके लिए एक ऊर्जा मानक शहरी क्षेत्रों में 2400 किलो-कैलोरी प्रति व्यस्क प्रतिदिन और ग्रामीण क्षेत्रों में 2900 किलो-कैलोरी प्रति व्यस्क प्रतिदिन तय किया गया था। इस मानक के आधार पर, वर्ष 1960–61 के मूल्यों पर, गरीबी रेखा को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 20 प्रति व्यक्ति प्रति माह और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 25 प्रति व्यक्ति प्रति माह की एक राष्ट्रीय न्यूनतम के रूप में परिभाषित किया गया। अनेक विशेषज्ञों ने स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या के लिए विभिन्न

गरीबी-रेखा व्यय-स्तर सुझाए। यहाँ दिए गए आँकड़े ही वे आँकड़े हैं जो योजना आयोग द्वारा प्रयोग किए गए। ये अनुमान न्यूनतम आवश्यकताओं का एक व्यापक निर्णय प्रस्तुत करते थे और पोषणीय आवश्यकताओं से नहीं जुड़े थे, हालाँकि इनको भी विचारणीय माना गया था।

तदोपरांत, छठी पंचवर्षी योजना (1980–85) के लिए, प्रति व्यक्ति उपभोग-व्यय दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया। ऊर्जा आवश्यकता प्रतिदिन को घटाकर ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 किलो-कैलोरी प्रति व्यस्क प्रतिदिन एवं शहरी क्षेत्रों में 2100 किलो-कैलोरी प्रति वयस्क प्रतिदिन के मानक पर ले आया गया। वर्ष 1973–74 में प्रेक्षित उपभोक्ता व्यवहार के आधार पर, यह आकलित किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों हेतु रु. 49 प्रति व्यक्ति प्रति माह और शहरी क्षेत्रों हेतु रु. 57 प्रति व्यक्ति प्रति माह का औसत उपभोक्ता व्यय 'गरीबी रेखा' है। इस चरण में 'गरीबी रेखा' की संकल्पना का प्रयोग, तद्नुसार, अंशतः नियामक और अंशतः व्यवहारात्मक रहा। इस दृष्टिकोण में पौषणिक प्रस्थिति मापने का प्रयास नहीं किया गया, न ही इसमें जनसमुदाय में कुपोषण एवं न्यून-पोषण की प्रासंगिकता को ध्यान में रखा गया। इस प्रकार, खींची गई गरीबी रेखाएँ उपभोग आवश्यकता पर आधारित थीं, न कि वास्तविक आय पर। इस दृष्टिकोण में, तद्नुसार, 'ऋण, सार्वजनिक संपदा संसाधनों का प्रयोग एवं अनौपचारिक सामाजिक सुरक्षा' पर निर्भरता में भ्रम पैदा कर दिया गया।

गरीबी रेखा मापने हेतु दृष्टिकोण को आगे वर्ष 2004–05 से प्रभावी एक 365 दिवसीय स्मरण अवधि के लिए उपभोक्ता व्यय आँकड़ों के आधार पर (NSSO सर्वेक्षण का 61वाँ दौर) पाँच खाद्येतर वस्तुओं (यथा, वस्त्र, जूते-चप्पल, टिकाऊ वस्तुएँ, शिक्षा एवं संस्थागत चिकित्सा व्यय) को शामिल करने के लिए किंचित् परिवर्तित किया गया। इसके अलावा, 'प्रोटीन कैलोरी आवश्यकता' को शामिल करने हेतु एक अधिक वैज्ञानिक आधार को सहारा देने के लिए, राष्ट्रीय पोषण प्रबोधन ब्यूरो (NNMB) ने वर्ष 1974–75 से 10 राज्यों हेतु ग्रामीण कुटुंबों की आहार एवं पौषणिक स्थिति पर आँकड़े एकत्र करने शुरू कर दिए थे। उक्त ब्यूरो (NNMB) की आवधिक रिपोर्टों से उजागर हुआ है कि वर्ष 1981 तक प्रोटीन कैलोरी पर्याप्तता प्रस्थिति स्थिर रही परंतु तब से गिरती आ रही है। इन रिपोर्टों का दूसरा प्रकरण यह था कि वर्ष 2002 में केवल एक-तिहाई पूर्व-विद्यालयी बच्चे ही प्रोटीन कैलोरी पर्याप्तता मानक पूरा कर रहे थे। परवर्ती इस तथ्य का संसूचक है कि न्यून-पोषण भारत में पूर्व-विद्यालयी बच्चों के बीच एक बड़ी समस्या है। वर्ष 2004–2005 में गरीबी रेखा आकलित करने की कार्य-प्रणाली में एक और परिवर्तन किया गया जो था– 'मिश्रित स्मरण अवधि' दृष्टिकोण अपनाया जाना। इससे पूर्व (वर्ष 2000 के उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण में) खाद्य एवं खाद्येतर दोनों समेत सभी वस्तुओं के लिए एक 30-दिवसीय 'एकसमान स्मरण अवधि' (URP) को अपनाया गया था। वर्ष 2004–05 के दृष्टिकोण (MRP) का किंचित परिवर्तित रूप भी सामने आया, जिसमें खाद्येतर वस्तुओं के लिए 365-दिवसीय स्मरण दृष्टिकोण अपनाया गया और अन्य वस्तुओं के लिए 30-दिवसीय स्मरण दृष्टिकोण अपनाया गया। वर्ष 1999–2000 हेतु गरीबी रेखा के अनुमानों में, ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 27 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन (अथवा रु. 810 प्रति माह) रखा गया और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 24 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन (अथवा रु. 720 प्रति माह) रखा गया। वर्ष 2004–05 हेतु ये अनुमान रहे– ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 28 (रु. 840 प्रति माह) और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 26 (रु. 780 प्रति माह)।

वर्ष 2010–उपरांत किसी समय-बिंदु के आस-पास निर्धारित गरीबी रेखा के अनुमान दो प्रमुख रिपोर्टों से हैं। इनमें प्रथम तेंदुलकर रिपोर्ट (2009) से है जिसमें प्रति व्यक्ति प्रतिदिन आवश्यकता का शहरी क्षेत्रों हेतु सदृश अनुमान रु. 33 के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रु. 27 रखा गया था (यथा, ग्रामीण क्षेत्रों में रु. 810 प्रति व्यक्ति प्रति माह और शहरी क्षेत्रों में रु. 990 प्रति व्यक्ति प्रति माह)। इन तेंदुलकर अनुमानों में ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए एक साझा गरीबी रेखा पिटक (PLB) प्रयोग किया गया था जो कि सभी पूर्व कवायदों में उपभोग के दो अलग-अलग पिटकों पर विचार किए जाने से इतर था। ऐसा तेंदुलकर समिति द्वारा 'उक्त पिटक' (PLB') के संख्यात्मक नामक स्तर को निर्दिष्ट करने में मनमानापन के अंश से बचे जाने के लिए था और इसीलिए उसने ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए सांझा PBL के रूप में किसी निर्धन कुटुंब के अपेक्षाकृत कम विवादास्पद शहरी स्तरी PLB को मान्यता देने का विकल्प चुना। ऐसा 'अंतर्राज्य एवं अंतर्देशीय ग्रामीण-शहरी मूल्य अंतरों' हेतु यथावत समायोजन करने के बाद किया गया। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों हेतु पिछले दो अलग-अलग गरीबी रेखा पिटकों की ओर वापस लौटकर, रंगराजन द्वारा द्वितीय रिपोर्टों (2014) में गरीबी रेखा को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 32 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 47 प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के रूप में आकलित किया गया। यह ग्रामीण क्षेत्रों के लिए रु. 972 और शहरी क्षेत्रों के लिए रु. 1407 के एक मासिक प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का आकलन देती थी। वर्ष 2014 की रिपोर्ट में, वर्ष 2011–13 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की प्रतिशतता अखिल-भारतीय स्तर पर 29.5 प्रतिशत आकलित की गई, जहाँ उसका वितरण ग्रामीण एवं शहरी स्थानों में क्रमशः 30.9 प्रतिशत और 26.4 माना गया था।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) गरीबी को परिभाषित करें।

.....

.....

.....

.....

2) निरपेक्ष गरीबी और सापेक्ष गरीबी के बीच अंतर स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

3) गरीबी मापने के लिए प्रयुक्त दो दृष्टिकोण क्या हैं? ये किस प्रकार परस्पर भिन्न हैं?

.....

.....

.....

4) गरीबी मापने के उपभोग अथवा आय दृष्टिकोण की मूल कमी क्या है?

.....

.....

.....

5) गरीबी मापने का 'व्यक्ति-गणना अनुपात' कैसे परिभाषित किया जाता है? इसकी आधारभूत सीमा क्या है?

.....

.....

.....

.....

6) 'गरीबी अंतर सूचकांक' (PGI) मापदंड किस प्रकार 'व्यक्ति-गणना अनुपात/सूचकांक' पर किस प्रकार एक सुधार के रूप में देखा जाता है? उक्त सूचकांक (PGI) किस प्रकार व्यक्ति-गणना अनुपात की तुलना में उपयोगी है? गरीबी के PGI मापदंड की क्या सीमाबद्धता है?

.....

.....

.....

.....

7) 'वर्गित गरीबी सूचकांक' (SPGI) किस प्रकार गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) पर एक सुधार है?

.....

.....

.....

.....

8) सेन का गरीबी संबंधी सूचकांक क्या है? किस प्रकार यह अन्य विधियों से श्रेष्ठ है?

.....

.....

.....

.....

9) वे प्रमुख कारक कौन-से हैं जिन पर भारत में गरीबी आकलित करने हेतु दृष्टिकोणों में ध्यान दिया गया है? किस प्रकार ये कालांतर में बदल गए?

.....

.....

.....

10) भारत में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए तैयार किए गए गरीबी संबंधी विभिन्न अनुमानों का एक कालक्रमानुसार चित्र प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

8.3 गरीबी से जुड़े आयाम

हमने पहले देखा कि गरीबी बहुआयामी होती है। इसका अर्थ है कि यह सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों की सीमाएँ लाँघकर अनेक कारकों से सह-लग्नताएँ दर्शाती हैं। इस भाग में, हम देखेंगे कि ये सह-लग्नताएँ किस प्रकार काम करती हैं– कुछ पक्ष में तो कुछ विरोध में।

8.3.1 पोषण

गरीबी आय सीमित कर देती है और उसके परिणामस्वरूप व्यय भी, जिससे आहारीय वंचन और कुपोषण जन्म लेते हैं। कुपोषण के कारण मानसिक एवं शारीरिक विकास में कमी आती है। भारत में निर्धन वर्ग को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आर्थिक सहायता प्राप्त खाद्य सुलभ रहा है। परिणामतः, खाद्य अल्पता के क्षेत्र में, खाद्य पर घरेलू खर्च में कमी देखी गई है, खासकर निर्धन वर्ग में। ऐसी स्थिति का मुकाबला करने के लिए, वर्ष 1975 से, सरकार ने एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (ICDS) कार्यक्रम शुरू किया, जिसमें देशभर में बच्चों तथा गर्भवती एवं दुग्धपान कराने वाली स्त्रियों को खाद्य अनुपूरक उपलब्ध कराए गए। इसके बावजूद, अब तक 30 प्रतिशत से भी अधिक कम वज़न के बच्चे जन्म ले रहे हैं और लगभग आधे बच्चे न्यून पोषण का शिकार हैं। बच्चों के बीच उच्च न्यून-पोषण दरें मुख्यतः निम्न जन्म-वज़न तथा निकृष्ट शिशु एवं बाल पोषण/देखभाल प्रथाओं के कारण हैं।

8.3.2 ऋण

वित्तीय उदारीकरण के बाद, सूक्ष्म वित्त संबंधी सेवाओं में विस्तार देखा गया है। आरंभतः, इसे एक सकारात्मक विकास माना जाता है, परंतु कालांतर में यह महसूस किया गया कि यह वसूली जाने वाली उच्चतर ब्याज़ दरों के साथ समाज के निर्धनतर वर्गों पर बोझ बन रहा है। बहरहाल, देखा गया है कि निर्धन वर्ग को ऋण की बेहतर सुलभता उन्हें स्वयं को ग़रीबी के दायरे से बाहर लाने में मददगार सिद्ध होती है, जिससे उन्हें मानव पूँजी विकास एवं सूक्ष्म उद्यम स्थापित करने हेतु निवेश करने में मदद मिलती है जो कि उन्हें गरीबी से बाहर की ओर सफलता का मार्ग दिखाता है।

ऋण सेवाओं में सुधार दो संकेतकों द्वारा मापा जा सकता है – (i) निवल राज्य घरेलू उत्पाद में कुल बैंक ऋण का अनुपात, तथा (ii) प्रति व्यक्ति बैंक शाखाओं द्वारा मापित वित्तीय समावेशन अथवा व्यापन (यथा, प्रत्येक राज्य में प्रति दस लाख लोग कार्यरत बैंक शाखाओं की कुल संख्या)। देखा जाता है कि वित्तीय गहनता, भारत में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के साथ एक नकारात्मक एवं महत्त्वपूर्ण सह-संबद्ध रखती है। यह ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर घटे हुए पलायन से संभव हुआ है। इस प्रकार, बैंकिंग क्षेत्र विकास और वित्तीय समावेशन, आय असमानता और गरीबी घटा सकते हैं।

8.3.3 बीमा

तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा प्रायः निम्न आय वाले लोगों के लिए बहुत खर्चीली होती है। परिणामतः, तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा चाहने वाले लोग प्रायः अनुपचारित ही रह जाते हैं अथवा अस्पताल के कमर तोड़ बिल थामे रह जाते हैं; ये दोनों ही गरीबी को बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त, तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा की अपेक्षा रखने वाले हृदय रोग एवं कैंसर के मामले अनेक देशों में बढ़ रहे हैं, खासकर भारत जैसे निर्धनता की उच्चतर प्रासंगिकता वाले देशों में। इस लिहाज से आवश्यकता पूर्ति हेतु भारत में अनेक राज्यों ने सामाजिक बीमा कार्यक्रम शुरू किए हैं जो गरीबी रेखा से नीचे अवस्थित कुटुंबों को निःशुल्क तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, वर्ष 2010 में आरंभ (कर्नाटक में) वाजपेयी आरोग्यश्री योजना (VAS) निःशुल्क अभिलक्षित तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या सेवाओं के लिए लाभार्थियों को हक़दार बनाया, जिनमें शामिल हैं : हृदय संबंधी, रसौली रोग संबंधी, तंत्रिका-तंत्र संबंधी, अग्निक्षत एवं अभिघात संरक्षा। गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम (यथा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना) से भिन्न, उक्त योजना (VAS) में केवल तृतीयक स्वास्थ्य परिचर्या ही शामिल है और इसमें किसी पूर्व नामांकन अथवा वार्षिक बीमा किश्तें चुकाने की आवश्यकता नहीं होती। यह हृदय संबंधी एवं रसौली-संबंधी दशाओं वाले ऐसे रोगियों के स्वास्थ्य परिचर्या सेवा-प्रदाताओं को प्रोत्साहन भी देती है जिनके उपचार में महँगी विशेष संरक्षा वांछित होती है।

8.3.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में लघु अपंजीकृत उद्यमों में स्व-रोज़गार तथा औपचारिक क्षेत्र की असंरक्षित नौकरियों में वेतनिक रोज़गार दोनों शामिल होते हैं। इसका अर्थ है कि सभी अनौपचारिक कर्मचारी निर्धन नहीं है और न ही सभी कार्यरत निर्धन केवल अनौपचारिक क्षेत्र में लगे हैं। दूसरे शब्दों में, विश्वभर में ऐसे कर्मचारियों का एक वर्धमान प्रखण्ड है जो सामाजिक सुरक्षा के कोई भी लाभ लिए बिना औपचारिक क्षेत्र में से अनौपचारिक रोज़गार निकाल लेते हैं। इस प्रवृत्ति में आपाती स्वास्थ्य परिचर्या खर्चों के प्रति अपनी भेद्यता हेतु मान्यता अपेक्षित होती है, जो कि निर्धन वर्ग को और भी अधिक हाशिए पर धकेल देता है।

8.3.5 भेदभाव

गरीबी और भेदभाव प्रायः संबद्ध होते हैं। सजातीयता, जाति, लिंग, आदि पर आधारित भेदभाव परिवारों, विद्यालयों एवं कार्य-प्रतिवेश में संस्थागत प्रभावों की एक जटिल शृंखला के माध्यम से आर्थिक अवसर की सुलभता को सीधे प्रभावित करता है। भेदभाव गरीबी का कारण भी बनता है और गरीबी निवारण में बाधक भी। यद्यपि 'सहस्राब्दि विकास लक्ष्य' (MDGs) के अंतर्गत उपलब्धियों ने समुचित प्रगति को सहारा दिया है, ऐसे देशों में भी जहाँ उक्त लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है, असमानताएँ उपजी हैं। इस तथ्य को पहचाने जाने से वर्ष 2015–पश्चात् नवीकृत उक्त लक्ष्य (MDG) प्राधार में बढ़ती आर्थिक असमानताएँ घटाने की दिशा में काम करने के महत्त्व विषयक जागरूकता बढ़ती दिखाई दी है। इसका एक मुख्य अवयव है– भेदभाव दूर करने हेतु सक्रिय रूप से काम करना।

8.4 गरीबी निवारण हेतु किये गये उपाय : वर्ष 2010 तक

किसी भी सुघड़ और संपूर्ण गरीबी-रोधी रणनीति का एक अभिन्न भाग होना चाहिए– धारणीय तीव्र संवृद्धि। संकल्पनात्मक रूप से, धारणीय तीव्र संवृद्धि तेज़ी से गरीबी घटाने के लिए दो माध्यमों के सहारे काम करती है। प्रथम, तीव्र संवृद्धि रोज़गार सृजन करती है और वास्तविक वेतनों में वृद्धि करती है। दूसरे, तीव्र संवृद्धि सरकारी राजस्व में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करती है। बढ़ा राजस्व, बदले में, अपेक्षाकृत तेज़ गति से सामाजिक खर्चों के विस्तार में सहायक बनता है। भारत ने स्वतंत्रता-पश्चात् तीन से भी अधिक दशकों तक अति निम्न आय और निम्न संवृद्धि से शुरुआत की। परिणामतः, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं प्रत्यक्ष गरीबी-रोधी कार्यक्रमों पर प्रति व्यक्ति व्यय का अपेक्षाकृत निम्न स्तर देखा गया। 1990 के दशक में और वर्ष 2003–04 से 2011–12 के दौरान तीव्रतर संवृद्धि से स्थिति बदली, जिससे भारत एक सर्वतोमुखी ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना और एक ऐसी सर्वव्यापी प्रायः सार्वजनिक-वितरण प्रणाली (PD) लागू करने में सक्षम हुआ जो उच्च रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त दामों पर अनाज मुहैया कराती है। इसी परिप्रेक्ष्य में, प्रस्तुत पाठांश में हम तीन *प्रमुख* क्षेत्रों पर चर्चा करेंगे जो कि भारत में गरीबी निवारण की दृष्टि से *महत्त्वपूर्ण* हैं।

8.4.1 कृषिक संवृद्धि

गरीबी घटाने हेतु किसी भी रणनीति को ग्रामीण भारत के समक्ष उन मामलों को निपटाने में सक्षम होना ही चाहिए जिन पर कुल जनसंख्या का लगभग 68.6 प्रतिशत अब भी निर्भर है (यथा, वर्ष 2011 के जनगणना के अनुसार, लगभग 83.3 करोड़ लोग)। इसके अलावा, वर्ष 2011–12 में, भारत के निर्धन वर्ग का लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में ही रहता है, जहाँ अधिकांश की आजीविका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषिक क्षेत्र के कार्य-निष्पादन पर ही निर्भर है। ग्रामीण फार्म एवं ग़ैर-फार्म आमदें इतनी अधिक परस्पर-निर्भर होती हैं कि किसी सशक्त ग़ैर-फार्म ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी एक जीवंत कृषिक संवृद्धि की ज़रूरत होती है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के वर्ष 2011–12 के रोज़गार-बेरोज़गारी सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में कृषि एवं सहबद्ध क्रियाकलापों ने कुल कार्यबल के 49 प्रतिशत को रोज़गार दिया हुआ था। इतने विशाल कार्यबल के कृषि पर निर्भर होने के बावजूद, सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश 15 प्रतिशत से नीचे है। कृषि में श्रमबल के इस विषम वितरण हेतु कारणों में से एक है– ग्राम स्तर पर अथवा निकटवर्ती कस्बों एवं शहरों में वैकल्पिक आजीविका अवसरों का अभाव। परंपरागत कृषि प्रणालियों से जुड़ा अतिरिक्त श्रम बल निम्न फार्म उपज और आय में ही परिणत हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी के इस चक्र को तोड़ने के लिए एक द्विधारी रणनीति की आवश्यकता है– एक, हम कृषि क्षेत्र का निष्पादन सुधारें, और दो, इसके साथ ही, ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में उद्योग एवं सेवाओं में रोज़गार सृजन करें।

8.4.2 मध्याह्न भोजन योजना

मध्याह्न भोजन योजना (MDMS) वर्ष 1995 में एक केंद्र-प्रायोजित योजना के रूप में शुरू की गई, जिसके उद्देश्य थे– (i) स्कूल जाने वाले बच्चों की पौषणिक स्थिति सुधारना, (ii) पढ़ाई के समय लगने वाली भूख से मुक्ति और स्कूल में नामांकन वृद्धि, तथा, (iii) बीच में पढ़ाई छोड़ देना (अर्थात् ड्रॉप-आउट) दरें न्यूनतम कर विद्यालय में उपस्थिति कायम रखना। वर्ष 2008–09 से यह कार्यक्रम उच्चतर प्राथमिक स्तर तक बढ़ाया जा चुका है। सरकार उक्त योजना (MDMS) का विस्तार एक पुरोगामी तरीके

से करना चाहती है ताकि इसमें निजी विद्यालयों के बच्चों को भी शामिल किया जा सके (क्योंकि वे आर्थिक रूप से कमज़ोर तबकों के लिए 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित रखते हैं), ख़ासकर, अनुसूचित जाति/जनजाति एवं अल्पसंख्यक-केंद्रित क्षेत्रों में। बहरहाल, स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम के साथ उक्त योजना (MDM) की अभिसृति निकृष्ट ही रहा है। ऐसा लगता है, उक्त योजना के अंतर्गत प्रदान किए जाने वाले पोषण की उन्नत गुणवत्ता एवं सुरक्षा हेतु राज्य-विशिष्ट दिशा-निर्देश क्रमविकसित करने के लिए चिकित्सा महाविद्यालयों, गृह-विज्ञान संकायों एवं राज्य-स्तरीय मिड-डे मील योजना परिचालक एवं प्रबोधन समितियों के संजाल बनाने की आवश्यकता है। अब तब केवल 75 प्रतिशत विद्यालयों में ही रसोई घर है। इसका अर्थ है कि 25 प्रतिशत विद्यालय (3.62 लाख) खुले में अथवा पढ़ाई के कमरों में ही यह भोजन तैयार करवाते हैं। यह छात्रों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा की गुणवत्ता हेतु एक बड़ा चिंतनीय विषय है।

8.4.3 मनरेगा (MGNREGA)

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा–MGNREGA) प्रत्येक ग्रामीण कुटुंब के एक सदस्य को किसी ज्ञात वित्तीय वर्ष में एक विनिर्दिष्ट वेतन पर अकुशल रोज़गार के 100 दिनों की गारंटी देता है। यह योजना 200 चुने हुए ज़िलों में वर्ष 2006–07 में शुरू की गई परंतु धीरे-धीरे पूरे देश में फैला दी गई। इस योजना का अंतर्निहित उद्देश्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन कुटुंबों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। अन्य उद्देश्यों में शामिल हैं– प्राकृतिक संसाधन आधार का कायाकल्प करना, उत्पादशील ग्रामीण परिसम्पत्तियाँ सृजित करना, ग्रामीण निर्धन वर्ग को सुरक्षा जाल प्रदान कर स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देना, महिला सशक्तीकरण सुनिश्चित करना और तृणमूल-स्तरीय लोकतांत्रिक संस्थाओं को मज़बूत करना। मनरेगा के अंतर्गत लिए गए लगभग दो-तिहाई कार्य जल संरक्षण एवं कृषि उत्पादता पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाले अन्य क्रियाकलापों से ही जुड़े हैं। बड़ी संख्या में मनरेगा कार्यकर्ता छोटे व सीमांत किसान हैं। अनुसूचित जातियाँ एवं जनजातियाँ कुल रोज़गार के जनदिवसों के लगभग 47 प्रतिशत का लेखा-जोखा देती हैं। तैंतीस प्रतिशत के मापदंड के मुकाबले, इस योजना में महिला भागीदारी 50 प्रतिशत से भी अधिक है (यथा, वर्ष 2012–13 में 51.3 प्रतिशत, वर्ष 2013–14 में 52.8 प्रतिशत तथा वर्ष 2014–15 में 54.9 प्रतिशत)। औसत मज़दूरी वर्ष 2006–07 में रु. 65 से बढ़कर वर्ष 2014 में (प्रति व्यक्ति प्रतिदिन) रु. 144 हो गया है। एक महत्त्वपूर्ण विकास के रूप में, मनरेगा वित्त मंत्रालय द्वारा देश में सभी ज़िलों के लिए प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) की घोषणा है। नकारात्मक पक्ष में, वार्षिक रूप से प्रत्येक कुटुंब में एक व्यक्ति को रोज़गार के प्रत्याभूत 100 दिनों की तुलना में, मनरेगा की औसत उपलब्धि वर्ष 2009–10 को छोड़कर, जबकि यह लगभग 54 दिनों तक पहुँच गई थी, 50 से भी कम दिन रही है।

8.5 गरीबी निवारण के अभिनव उपाय : वर्ष 2010–उपरांत

वर्ष 2010 के उपरांत वर्षों में तीन महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। ये निम्नवत् हैं :

8.5.1 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013

भारत में सार्वजनिक-वितरण प्रणाली (PDS) का एक लम्बा इतिहास रहा है, जिसके द्वारा सरकार नागरिकों को आर्थिक सहायता प्राप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराती है। मूल

रूप से, यह योजना सर्वजनीन थी परंतु तदन्तर इसे निर्धन वर्ग पर अभिलक्षित चयनात्मक बना दिया गया। वर्ष 2013 का राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA) विनिर्दिष्ट करता है कि ग्रामीण जनसंख्या का 75 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग आर्थिक सहायता प्राप्त कीमतों पर पाँच किलोग्राम खाद्यान्न, प्रति व्यक्ति, प्रति माह हेतु पात्र होगा। अत्यंत निर्धन कुटुंबों का एक लघु उपसमूह इस कार्यक्रम के अंतर्गत सात किलो खाद्यान्न प्राप्त करने का हक़दार है। व्यापक रूप से, उक्त प्रणाली (PDS) देश के चुनिंदा क्षेत्रों में पूर्व-निर्दिष्ट न्यूनतम समर्थन कीमतों (MSP) पर खाद्यान्नों के सरकारी प्रापण के आधार पर काम करती है। इस अन्न को यह फिर राज्यों को उपलब्ध कराती है जो बदले में उसे उचित दर दुकानों पर समाप्त एक विशाल संजाल के माध्यम से लाभार्थियों तक पहुँचाते हैं।

8.5.2 प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण

प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) विधि से विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत लाभों के वर्तमान सदोष वितरण के स्थान पर गरीबी-रोधी कार्यक्रमों में क्रांति लाने पर अभिलक्षित दो प्रमुख साधन हैं– जन धन बैंक खाते और बायोमैट्रिक परिचय-पत्र (आधार)। मनरेगा के अंतर्गत, जिसमें वेतनों का प्रत्यक्ष हस्तांतरण पहले ही शुरू हो चुका है, नियोक्ता आधार पहचान का प्रयोग कर एक केंद्रीय डेटाबेस में किसी भी कर्मचारी का रोज़गार दर्ज़ करता है। इससे वेतन भुगतान का हस्तांतरण किसी केंद्र सरकार के खाते से कर्मचारी के बैंक खाते में हो जाना सुनिश्चित हो जाता है। कर्मचारी फिर अपने मोबाइल अथवा किसी बैंक अभिकर्ता के माध्यम से अपने खाते का लाभ उठा सकता है। सरकार ने आधार से जुड़े बैंक खातों के लिए कुछ बीमा योजनाएँ भी शुरू कीं। उदाहरण के लिए, 10 करोड़ से भी अधिक लाभार्थियों को रु-पे (RuPay) कार्ड जारी किए गए हैं, जो कि रु. 1.00 लाख प्रति कुटुंब व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा का लाभ प्राप्त करायेंगे। इसके अलावा, रु. 30,000 का एक जीवन बीमा संरक्षा का प्रावधान भी है। उक्त हस्तांतरण (DBT) में बड़ा बदलाव यह है कि यह ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में आने वाले कुटुंबों को लक्ष्य बनाता है।

8.5.3 सबके लिए आवास, 2016

वर्ष 2016 में इंदिरा आवास योजना (IAY) और राजीव आवास योजना (RAY) नामक दो ग्रामीण-शहरी आवास योजनाओं का विलय कर एक नया कार्यक्रम 'सबके लिए आवास (ग्रामीण एवं शहरी)' शुरू किया गया। यह कार्यक्रम वर्ष 2022 तक सभी के लिए जल, स्वच्छता प्रबंध, बिजली एवं ब्रॉडबैंड आदि बुनियादी सुख-सुविधाओं वाले पक्के घर मुहैया कराने पर अभिलक्षित है। सफलतापूर्वक क्रियान्वित किए जाने की स्थिति में, यह कार्यक्रम देशभर में अत्यावश्यक शालीन रोज़गार का सृजन करके पहले से अधिक निवेश में परिणत होने की संभावना रखता है। बहरहाल, इस योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ हैं। सर्वप्रथम, आय-अनुकूल आवास, इस उद्देश्य हेतु भूमि उपलब्ध कराए बिना संभव नहीं होगा। इस संबंध में शहरी भूमि सीमा अधिनियम (1976) से जुड़े मुद्दे सुलझाए जाने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 2 (दिये गए स्थान अपने उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) पोषणिक स्थिति गरीबी का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक किस प्रकार हैं?

.....

.....

.....

.....

2) गरीबी निवारण में ऋण किस प्रकार उपयोगी होता है?

.....

.....

.....

.....

3) गरीबी से संघर्ष में बीमा क्या भूमिका निभाता है?

.....

.....

.....

.....

4) धारणीय तीव्र संवृद्धि गरीबी घटाने में किस प्रकार मदद करती है?

.....

.....

.....

.....

5) गरीबी से संघर्ष में 'कृषिक वृद्धि' किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है?

.....

.....

.....

.....

6) भारत में गरीबी-रोधी कार्यक्रमों में क्रांति लाने पर प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) किस प्रकार अभिलक्षित है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 सार-संक्षेप

व्यक्ति गणना अनुपात जैसे कुछ गरीबी मापदंड परिकलन में सरल हैं किंतु गरीबी की गहनता का प्रग्रहण करने में कम दक्ष हैं। गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) और वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SQGI) अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे गरीबी की गहनता को ध्यान में रखते हैं। भारत में, गरीबी के आकलन NSSO उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षणों द्वारा प्रस्तुत उपभोग प्रतिमान को ध्यान में रखकर विकसित किए गए हैं। उपभोग आवश्यकताओं के एक न्यूनतम पिटक को लेकर, जिसमें अभी हाल ही में कुछ ग़ैर-खाद्य वस्तुएँ शामिल की गई हैं, गरीबी रेखाएँ बुनियादी ज़रूरतों की सुलभता हेतु वांछित आय के स्तर के समतुल्य निर्धारित की जाती हैं। समय-समय पर किए गए आकलन वर्ष 1961 में ग्रामीण क्षेत्रों हेतु रु- 20/– प्रति व्यक्ति प्रति माह से वर्ष 2010 के आसपास रु. 972/– प्रति व्यक्ति प्रति माह का एक गरीबी-रेखा आय तक भिन्न-भिन्न रहे हैं। अनेक गरीबी निवारण योजनाएँ शुरू की जा चुकी हैं, जिन्होंने जनसंख्या में गरीबी-स्तरीय लोगों का भाग घटाने में योगदान दिया है। अभी हाल ही में, 2000–उपरांत वर्षों में, मनरेगा, प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण, मूल्यवर्धित सेवा, शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मध्याह्न भोजन योजना का क्रमिक विस्तार, आदि कुछ सरकारी पहलकारियाँ हैं जो संसाधनों की चोरी रोकने व अभिप्रेत प्रस्तुति सुनिश्चित करने पर अभिलक्षित हैं।

8.7 शब्दावली

गरीबी रेखा : आधारभूत आवश्यक वस्तुओं को क्रय करने हेतु वांछित आय का न्यूनतम स्तर, जो कि प्रति व्यक्ति आधार पर व्यक्त किया जाता है और इसके नीचे आने वाला कोई भी व्यक्ति गरीब अर्थात् निर्धन माना जाएगा, यथा– गरीबी रेखा से नीचे का व्यक्ति।

व्यक्ति-गणना अनुपात (HCR) : गरीबी मापने की एक विधि जिसमें गरीबी-रेखा आय से नीचे आने वाले लोगों की कुल संख्या को जनसंख्या में सर्वेक्षण किए गए लोगों की कुल संख्या से विभाजित करते हैं।

गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) : यह एक गरीबी की गहनता का मापदंड है जिसमें गरीबी से आने वाले लोगों को संख्यात्मक रूप से 'शून्य' माना जाता है (यथा– गरीबी रेखा से ऊपर) तथा गरीबी-रेखा से नीचे आय वाले लोगों की संख्यात्मक रूप से वास्तविक आय एवं गरीबी रेखा-स्तरीय आय के सैद्धांतिक समतुल्य के बीच अंतर के बराबर माना जाता है।

वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SPGI) : गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) गरीबी रेखा के नीचे के प्रत्येक व्यक्ति को एक समान भार निर्दिष्ट करता है। इससे यह सूचकांक (PGI) गरीबी की कोटि अथवा

गहनता के प्रति असंवेदनशील हो जाता है। वर्गित गरीबी अंतर सूचकांक (SPGI) गरीबी के वास्तविक विस्तार के बराबर भार निर्दिष्ट कर इस अभाव को दूर कर देता है, जिससे उनको वृहत्तर भार दिया जाना सुनिश्चित हो जाता है जिनकी गरीबी की प्रस्थिति दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रचण्ड हो।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Datt Gaurav and Martin Ravallion (1992). 'Growth and Redistribution Components of Changes in Poverty Measures: A Decomposition with Applications to Brazil and India in the 1980s." *Journal of development economics* 38, No. 2 (1992): 275-295.

2) Gillis Malcolm, Dwight H Perkins, Michael Roemer and Donald R. Snodgrass (1992). *Economics of Development,* No. 3, WW Norton & Company Inc.

3) Gupta Akhil (2012). *Red Tape: Bureaucracy, Structural Violence and Poverty in India,* Duke University Press.

4) Kohli, Atul (1987). *The State and Poverty in India: The Politics of Reform,* Cambridge University Press.

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) गरीबी का अर्थ है – आय, अथवा भौतिक सम्पत्ति, के न्यूनतम स्तर का अभाव, जिसके कारण व्यक्ति खाद्य, वस्त्र एवं आवास संबंधी अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाता है। तकनीकी रूप से, इसे 'गरीबी रेखा' की संकल्पना द्वारा परिभाषित किया जाता है जो कि ऐसी रेखा को इंगित करती है जो स्वयं को उत्पादनक्षम रूप से सहारा देने हेतु न्यूनतम आवश्यकताओं का द्योतक होती है।

2) सापेक्ष गरीबी व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को समाज में अन्य लोगों की इसी स्थिति के संबंध में ध्यानार्थ लेती है। निरपेक्ष गरीबी का हमने ऊपर उल्लेख किया, यथा– खाद्य, वस्त्र एवं आवाज जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के दाम चुकाने हेतु न्यूनतम आय अथवा सम्पत्ति का अभाव।

3) गरीबी आय दृष्टिकोण अथवा उपभोग दृष्टिकोण द्वारा मापी जाती है। परवर्ती में अनानिवार्य रूप से धन खर्च कर किया गया उपभोग शामिल होता है; यथा, वेतन के बदले में प्राप्त खाद्य। आय दृष्टिकोण में इसे बुनियादी ज़रूरतों का दाम चुकाने हेतु प्रतिदिन वांछित धन के रूप में परिभाषित किया जाता है। दोनों ही कालांतर में परिवर्तन के अधीन हैं।

4) इन दृष्टिकोणों के तहत न्यून पोषण अथवा कुपोषण नहीं मापा गया। इसमें बुनियादी शिक्षा एवं स्वास्थ्य व्यय पूरे करने हेतु आवश्यकता को ध्यान में नहीं रखा गया।

5) इसे गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की संख्या एवं जनसंख्या में कुल लोगों की संख्या के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। अतएव, यह गरीबी की गहनता अथवा विस्तार नहीं प्रकट करता।

6) जबकि गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की एकसमान संख्या दर्शाने वाले दो क्षेत्रों हेतु व्यक्ति गणना अनुपात बराबर होगा, गरीबी अंतर सूचकांक (PGI) भिन्न होगा। इससे नीति-निर्माता क्षेत्र में अभिलक्षित सहायता पर ध्यान केंद्रित कर पाएँगे। इस सूचकांक (PGI) की एक सीमाबद्धता यह है कि यह निर्धन कुटुंबों अथवा लोगों की आमदों के बीच असमानता की कोटि के प्रति संवेदनशील नहीं है।

7) गरीबी अंतरों के समानुपात भार प्रयोग कर, SPGI PGI की कमी से उबर जाता है, जो कि उन सभी को समान भार निर्दिष्ट करता है जो ग़रीब हैं। व्यवहारतः, आप उक्त अंतर को इस तथ्य से देख सकते हैं कि उन सभी के लिए PGI हेतु अनुपात सामान्यतः '1' से गुणा किया जाता है ख्यथा, $\left(\frac{Z-Y_i}{Z}\right)$ को '1' से गुणा किया जाता है जो गरीब हैं जबकि SPGI में, यह होगा– $\frac{G_i}{z}$ की गुणा $\frac{G_i}{z}$ से।

8) सेन के मापदंड में सभी तीन मापदंडों पर समन्वित रूप से विचार किया जाता है; यथा, व्यक्ति गणना अनुपात (गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की संख्या), PGI (गरीबी की गहनता) तथा SPGI (किसी समूह के भीतर गरीबी का वितरण)। यह, दरअसल, व्यक्ति गणना और गरीबी अंतर मापांकों का भारित औसत होता है।

9) जबकि पिछले सर्वेक्षणों में केवल खाद्य वस्तुओं पर विचार किया गया था, वर्ष 2000–पश्चात् ग़ैर-खाद्य वस्तुओं पर भी विचार किया गया।

10. मासिक प्रति व्यक्ति व्यय के रूप में व्यक्त, ग्रामीण गरीबी हेतु आकलन वर्ष 1961 में रु. 20 से वर्ष 1974 में रु. 49 और वर्ष 2000 में रु. 810 तक भिन्न-भिन्न हैं। वर्ष 2010 पश्चात्, ग्रामीण गरीबी रु. 972 पर आकलित की गई, जबकि शहरी गरीबी स्तर रु. 1407 पर रखा गया है।

बोध प्रश्न 2

1) नवजात शिशुओं के मानसिक एवं शारीरिक विकास के अभाव में परिणत होकर; न्यून पोषित माताओं द्वारा बच्चों का निम्न जन्म भार; बच्चों के लालन-पालन एवं देखभाल संबंधी प्रथाओं का अभाव, आदि।

2) इससे निर्धन परिवार को बेहतर स्वास्थ्य रक्षा एवं बाल शिक्षा में निवेश करने में मदद मिल सकती है। यह सूक्ष्म उद्यम लगाने में भी मददगार हो सकती है।

3) सामाजिक सुरक्षा बीमा, पूर्व नामांकन की आवश्यकता एवं बीमा-किश्त बोझ के बिना प्रस्तुत, प्रमुख तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा हेतु संरक्षा प्रदान कर एक उपयोगी भूमिका निभा सकते हैं जो कि महँगी और निर्धन कुटुंबों के बूते से बाहर होती हैं।

4) दो परिप्रेक्ष्यों में : (i) रोज़गार सृजन कर व वास्तविक वेतन बढ़ाकर; तथा (ii) बढ़े सामाजिक क्षेत्र निवेशों हेतु सरकारी राजस्व में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करके।

5) दो तरीके से – (i) कृषिक क्षेत्रों का निष्पादन सुधार कर; और (ii) ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में उद्योग एवं सेवाओं में रोज़गार सृजन कर।

6) देशव्यापी प्रसार पर अभिलक्षित और भुगतान एवं आर्थिक परिदान निर्धन कर्मचारियों के बैंक खातों से सीधे जोड़कर; प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण के माध्यम से सार्वजनिक धन की चोरी संबंधी प्रमुख कमी को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 विषमता*

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 विषय प्रवेश

9.2 विषमता के प्रकार

9.2.1 क्षैतिज विषमता एवं अनुलम्ब विषमता

9.3 भारत में आय, उपभोग एवं पोषण में विषमता

9.3.1 आय विषमता

9.3.2 उपभोग विषमता

9.3.3 पोषणिक विषमता

9.4 क्षेत्रीय विषमता

9.4.1 जीवन-स्तर

9.4.2 क्षेत्रीय अपसरण

9.5 सार-संक्षेप

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- विषमता को परिभाषित कर सकें;
- विषमता के प्रकारों का वर्णन कर सकें, विशेषकर क्षैतित विषमता एवं अनुलम्ब विषमता के बीच भेद करते हुए;
- किन्हीं साधारण आँकड़ों में अपने परिकलन हेतु प्रयुक्त निष्पीड़न के साथ गिनी (गिनी गुणांक) द्वारा दी गई आय में विषमता का मापदंड इंगित कर सकें;
- भारत में 'आय, उपभोग एवं पोषण' के संदर्भ में विषमता में रुझानों का विश्लेषण कर सकें;
- भारत में 'जीवन-स्तर' एवं 'कार्यक्षेत्रीय संवृद्धि' वर्णन के शब्दों में विषमता में क्षेत्रीय अपसरण के विषय पर चर्चा कर सकें; तथा
- भारत में सुधारपूर्व एवं सुधारोपरांत वर्षों में एक तुलनात्मक वर्णन में 'क्षेत्रीय अपसरण' की संकल्पना पर विचार कर सकें।

9.1 विषय प्रवेश

विषमता का शब्दकोशीय अर्थ है– 'समाज में एक अन्यायपूर्ण स्थिति जिसमें कुछ लोगों के पास दूसरों की अपेक्षा अधिक अवसर, आय, आदि होते हैं।' यही लोगों अथवा समूहों के बीच सामाजिक प्रस्थिति एवं धन अथवा अवसर में अंतर है। अर्थशास्त्र में

*डॉ. स्मृतिकन घोष, सहायक प्रोफेसर, स्कॉटिश कॉलेज, कोलकाता

विषमता का अर्थ होता है– व्यक्तिजन, समूहों अथवा देशों के बीच आर्थिक क्षेम में अंतर। इस प्रकार की विषमता लोगों की अक्षमता, सजातिविषयक पृष्ठभूमि एवं लिंग पर निर्भर करती है। एक स्पष्ट भेद, तद्नुसार, 'परिणाम में विषमता' और 'अवसर में विषमता' के बीच किया जाता है। पूर्ववर्ती तब होता है जब लोगों के पास द्रव्यात्मक धन का समान स्तर नहीं हो पाता, जो कि ऐसी स्थिति को इंगित करता है जिसमें लोग असदृश आर्थिक दशाओं में रहते हैं। अवसर में विषमता, दूसरी ओर, कोई सामान्य आरंभ-बिंदु सुनिश्चित करने से संबद्ध होती है। अपने योग्यता-क्षमता दृष्टिकोण के माध्यम से प्रो. अमर्त्य सेन द्वारा प्रस्तुत अवसर की विषमता को 'चुनने व कार्य करने हेतु लोगों की स्वतंत्रता' के रूप में परिभाषित किया जाता है। जहाँ ये दोनों राज्य द्वारा 'सामाजिक न्याय सिद्धांत' के तहत 'अधिकार' के विषय स्वरूप प्रदान किए जाने ही चाहिए। इन दो आधारभूत भेदों के अलावा, विषमता के अन्य कई विशिष्ट प्रकार होते हैं। उदाहरण के लिए, विषमता आय, उपभोग और पोषण के संदर्भ में परिभाषित की जा सकती है। यह 'समूहों के बीच विषमता' (जिसे क्षैतिज विषमता कहते हैं) और 'लोगों के बीच विषमता' (जिसे अनुलम्ब विषमता कहते हैं) के शब्दों में भी परिभाषित की जा सकती है। विषमता के विभिन्न प्रकारों को समझने के लिए हमारे पास अनेक मापदंड होते हैं। इस इकाई में हम इन्हीं संकल्पनाओं एवं विषयों पर चर्चा करेंगे।

9.2 विषमता के प्रकार

मोटे तौर पर, विषमता को आर्थिक विषमता और सामाजिक विषमता के रूप में पहचाना जाता है। आर्थिक विषमता का अधिकांशतः अर्थ होता है– 'आय विषमता', जो कि उपभोग, पोषणिक एवं जीवन दशाओं में रूपायित होती है। सामाजिक विषमता, दूसरी ओर, अनेक आयाम दर्शाती है, जिनमें प्रमुख हैं– (i) राजनीतिक विषमता, और (ii) अवसरों में विषमता (जो कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच के अवसरों से जन्म लेती है)।

आय विषमता वह सीमा दर्शाती है जहाँ तक कि जनसमुदाय के बीच आय असमान रूप से वितरित होती है। यह कुटुंब अथवा व्यक्ति की आय का असमान वितरण हो सकता है। आय विषमता प्रायः जनसमुदाय की किसी प्रतिशतता को प्राप्त आय की प्रतिशत के रूप में प्रस्तुत की जाती है। उदाहरणार्थ, किसी देश की आय के 70 प्रतिशत पर देश की जनसंख्या के 20 प्रतिशत का नियंत्रण है। इस दृष्टिकोण से, आय विषमता 'निष्पक्षता' अथवा 'न्याय' की अवधारणा से जुड़ी होती है क्योंकि यदि किसी देश की आय का असंगत रूप से वृहद् भाग अमीर वर्ग के पास ही हो तो आमतौर पर इसे 'अनुचित' माना जाएगा। आय विषमता के कारण क्षेत्र, लिंग, शिक्षा व सामाजिक प्रस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अर्थशास्त्रियों के बीच आय विषमता के निहितार्थों के विषय पर और इस विषय पर कि यह अंततोगत्वा सकारात्मक होता है अथवा नकारात्मक, सर्वसम्मति का अभाव है।

भारत में, आय विषमता सन् 1980 के दशक से बढ़ी है; 1980 के दशक में राष्ट्रीय आय का 30 से 35 प्रतिशत अर्जकों के शीर्ष 10 प्रतिशत के पास ही था, परंतु हाल ही में (वर्ष 2016), शीर्ष 10 प्रतिशत की आय का अंश 55 प्रतिशत तक बढ़ गया है (विश्व विषमता रिपोर्ट, 2018)। इस प्रकार का रुझान 'उच्च आय विषमता' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सामाजिक विषमता को अनेक तरीकों से देखा जा सकता है। यह आय बढ़ाने हेतु आवश्यक अवसरों के प्रकार (यथा, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ

उठाने हेतु अवसरों में समानता लाने) अथवा अपनी बात सुनी जाने हेतु संघटित होने में असमर्थता (यथा, राजनीतिक विषमता) से जुड़ी हो सकती है। उक्त अवसर उन परिस्थितियों से संबद्ध होते हैं जो किसी मनुष्य विशेष के नियंत्रण से बाहर होती हैं, परंतु राज्य द्वारा अथवा आयोजित संघटन द्वारा अनुकूल बनाई जा सकती हैं।

9.2.1 क्षैतिज विषमता एवं अनुलम्ब विषमता

विषमता में अंतर्समूह (यथा, समूहों के बीच) अथवा अंतःसमूह (यथा, किसी समूह के भीतर) के परिप्रेक्ष्य से भिन्नता दर्शाई जा सकती है। इसके आधार पर दो प्रकार की विषमताएँ सामने आती हैं (यथा क्षैतिज विषमता और अनुलंब विषमता)। क्षैतिज विषमता का अर्थ है– सांस्कृतिक रूप से परिभाषित अथवा गठित समूहों (यथा, अंतर्समूह; उदाहरणार्थ, सजाति, धर्म द्वारा) के बीच विषमता। इस बात के वर्धमान साक्ष्य हैं कि क्षैतिज विषमता की प्रकृति एवं स्तर 'हिंसक संघर्ष के जोखिम' संबंधी महत्त्वपूर्ण निर्धारक होते हैं। समूह विषमता सशक्त शिकायतों को जन्म देती है जो नेता वर्ग राजनीतिक विरोध हेतु लोगों को संघटित करने में प्रयोग कर सकता है। जबकि इस प्रकार के संघटन आयोजित विरोध-प्रदर्शनों के प्रत्युत्तर में सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले लाभों के माध्यम से विषमता घटाने हेतु साधनों के रूप में स्वयं काम कर सकते हैं, एक आर्थिक दृष्टिकोण से क्षैतिज विषमता घटाने पर ध्यान देना संघर्ष-प्रवण समाजों में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होता है। ऐसा इसलिए है कि हिंसक संघर्ष विकास को क्षति पहुँचाने व ग़रीबी बढ़ाने वाले के रूप में ही जाने जाते हैं।

अनुलंब विषमता का अर्थ है, व्यक्तियों अथवा कुटुंबों के बीच विषमता। अनुलंब विषमता की प्रकृति एवं विस्तार अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण है। इनमें से एक है– *पहले,* न्यायसंगत समाज का निर्माण, क्योंकि किसी भी समतावादी अथवा अपेक्षाकृत अधिक समान समाज में प्रसन्नता कहीं अधिक दिखाई देती है। *दूसरे,* विषमता का प्रसार, किसी भी प्रदत्त प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय के लिए, ग़रीबी के स्तर को निर्धारित करता है। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (MDGs) सकल जगत में ग़रीबी में रहने वाले लोगों की संख्या से संबद्ध है। *तीसरे,* इस बात के प्रमाण हैं कि एक अपेक्षाकृत अधिक समान अर्थव्यवस्था तीव्रतर विकास करती है। अतः, अनुलंब विषमता को घटाना एक आर्थिक लक्ष्य बन जाता है। *चौथे,* उच्चतर विषमता आमतौर पर आपराधिकता की उच्चतर दरों से जुड़ी होती है। इन्हीं सब बातों के मद्देनज़र, अनुलंब विषमता घटाने हेतु विकासशील नीतियाँ आवश्यक हैं।

अतएव, जबकि दोनों ही प्रकार की विषमताओं को दूर किया जाना आवश्यक है, संघर्ष का खतरा झेल रहे देशों के लिए, क्षैतिज विषमता घटाने पर ध्यान दिया जाना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर वहाँ जहाँ संघर्ष का कोई प्रमुख भूतपूर्व स्रोत रहा हो। जबकि अनुलंब विषमता विशिष्टतः आय एवं आवसरिक रूप से परिसंपत्तियों के शब्दों में मापी जाती है, क्षैतिज विषमता का मापदंड राजनीतिक, आर्थिक एवं समाजिक चरों की एक विस्तृत शृंखला तक विस्तीर्ण है।

9.3 भारत में आय, उपभोग एवं पोषण में विषमता

भारत सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं ताकि गरीब कुटुंबों को 'सवेतन रोज़गार' प्रदान कर उनकी आय बढ़ाने में मदद की जा सके और इस प्रकार, आय विषमता के दुष्प्रभाव कम किए जा सकें। इस तथ्य के साथ कि बड़ी संख्या में दरिद्रजन अशिक्षित और अकुशल हैं, इस प्रकार के कार्यक्रम रोज़गर की निर्धारित

दिवस-संख्या सुनिश्चित करने के लिए चलाए जाते हैं, जो कि प्रायः 'काम के बदले अनाज' आधार पर, खासकार ग़रीबी की रेखा से नीचे गुज़र-बसर करने वाले गरीब परिवारों के सहायतार्थ होते हैं। इस दिशा में किए गए प्रयासों का एक विस्तृत लेखा-जोखा 'रोज़गार एवं बेरोज़गारी' (भाग 10.3) विषय अगली इकाई में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान इकाई में इस भाग के प्रयोजन हेतु हम देखेंगे कि पिछले सात दशकों में भारत में 'आय, उपभोग एवं पोषक' संबधी विषमताओं के लिहाज से क्या रुझान (यथा, कालांतर में किए गए प्रयासों का प्रभाव) रहा।

9.3.1 आय विषमता

भारत अपनी धन-संपत्ति (5600 अरब डॉलर के बराबर) के 54 प्रतिशत पर नियंत्रण रखने वाले लखपतियों के साथ वैश्विक रूप से दूसरा सर्वाधिक असमान देश है। यह विश्व में 10 सम्पन्नतम देशों में एक है और फिर भी औसत भारतीय अपेक्षाकृत गरीब है। इस आय विषमता के पीछे प्रमुख कारण, आमतौर पर किसी भी देश के लिए होते हैं– (i) उच्च रूप से असमान परिसंपत्ति वितरण; (ii) अपर्याप्त रोज़गार सृजन; और (iii) विभेदीय क्षेत्रीय संवृद्धि। विशेष रूप से, भारत के लिए आय विषमता के प्रमुख कारण निम्नवत् पहचाने जा सकते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया, अनुलंब विषमता विशिष्टतः आय एवं परिसंपत्तियों के पदों में मापी जाती है। परिसम्पत्तियों के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों में, कृषि भूमि अर्थात् जोतों पर विशिष्ट रूप से विचार किया जाता है। भारत में कृषि भूमि के वर्ग (स्वामित्व वाली भूमि के आकार के आधार पर, जहाँ 1 हेक्टेयर 2.47 अथवा स्थूलतः 2.5 एकड़ के बराबर होता है) निम्नलिखित छह रूपों में देखें जा सकते हैं – (i) भूमिहीन (0.002 हेक्टेयर से कम); (ii) सीमांत (0.002 से 1 हेक्टेयर); (iii) लघु (1–2 हेक्टेयर); (iv) अर्ध-मध्यम (2–4 हेक्टेयर); (v) मध्यम (4–10 हेक्टेयर); और (vi) वृहद् (10 हेक्टेयर से अधिक)। इसके अलावा, इस वर्गीकरण के उद्देश्य से, जनसमुदाय का सामाजिक वर्ग एक द्वितीयक चर के रूप में लिया जाता है। सामाजिक वर्ग को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है– (i) अनुसूचित जाति (SC), (ii) अनुसूचित जनजाति (ST), (iii) अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC), तथा (iv) अन्य। विभिन्न सामाजिक वर्गों के एक छोर से दूसरे छोर तक जोत विषयक आँकड़े राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा एकत्र एवं प्रकाशित किए जाते हैं। वर्ष 2010-11 हेतु इस संबंध में उपलब्ध नवीनतम आँकड़े (वर्ष 2013 में NSSO के 70वें दौर में प्रकाशित) निम्नलिखित रुझान दर्शाते हैं :

- कुल कार्योत्पादक जोतों का 75 प्रतिशत सीमांत जोते हैं, जहाँ अन्य 10 प्रतिशत कृषि भूमि लघु वर्ग में आती है। लगभग 7 प्रतिशत भूमिहीन हैं (यथा, 0.0002 हेक्टेयर से कम)। तद्नुसार, कुल 85 प्रतिशत कार्योत्पाद कृषि भूमि एक एकड़ से भी कम कृष्य भूमि के कार्यशील 'लघु एवं सीमांत' खण्ड के पास है। कुल परिचालित क्षेत्र के लिहाज़ से, वे लगभग 44 प्रतिशत का ही लेखा-जोखा देते हैं। इस प्रकार, औसत कृषि भूमि विशिष्ट रूप से बहुत कम है। दूसरी ओर, बड़ी जोतें (यथा, 10 हेक्टेयर से ऊपर का क्षेत्र) कुल जोतों के 1 प्रतिशत (0.7 प्रतिशत) से भी कम हैं परंतु कुल कृष्य क्षेत्र के लगभग 11 प्रतिशत के समान हैं। भू-जोतों में विषमता की विस्तार तो प्रत्यक्ष है परंतु, यह गिनी जैसे किसी संकेतक द्वारा भी मापी जा सकती है।

- स्वामित्व की सामाजिक श्रेणी द्वारा भूमि के संकेंद्रण हेतु गिनी-गुणांक अनुसूचित जाति हेतु 0.8, अन्य पिछड़ा वर्ग हेतु 0.7 और अनुसूचित जनजाति हेतु 0.6 है। चूँकि गिनी का मान 1 के निकट होने का अर्थ अधिक विषमता होता है, यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक सोपान से नीचे के लोगों का वर्ग भी वही है जो जोतों के स्वामित्व के लिहाज से नितांत अलाभान्वित है।

- बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थानों से वित्त की सरल सुलभता के कारण निजी निगमित क्षेत्र से संबद्ध बड़े पूँजीपतियों ने परिसंपत्तियों/धन-संपत्ति के संकेंद्रण की उच्च कोटि हासिल की हुई है।

इस प्रकार की उच्च आय विषमता के परिणाम हैं– (i) वर्ग संघर्ष; (ii) राजनीतिक प्रभुत्व; (iii) शोषण; (iv) एकाधिकार का सृजन; (v) अलोकतांत्रिक साधनों से प्रतिभा का दमन; (vi) नैतिक अपकर्ष; तथा (vi) असमान पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन।

9.3.2 उपभोग विषमता

उपभोग विषमता किंचित्-परिवर्तित मिश्रित संदर्भ अवधि (MMRP) स्तरों पर रुपयों में मासिक प्रतिव्यक्ति व्यय (MPCE) विषयक आँकड़ों द्वारा मापी जाती है। वर्ष 1993-94 तक, गरीबी की रेखा एकरूप संदर्भ अवधि (URP) आँकड़ों पर आधारित थी, जिनमें लोगों से किसी 30-दिवसीय अवधि के एक छोर से दूसरे छोर तक उनके उपभोग व्यय के विषय में पूछना शामिल था। वर्ष 1999-2000 से यह विधि बदलकर 'मिश्रित संदर्भ अवधि' (MRP) के अनुसार, आँकड़े एकत्र करना हो गई। इस विधि (MRP) के अंतर्गत, *अल्प-प्रायिक रूप से प्रयुक्त 5 मदों* पर आँकड़े किसी एक वर्ष की अवधि तक एकत्र किए जाते हैं और अन्य मदों के लिए 30 दिवसीय विधि ही अपनायी जाती है। निम्न-प्रायिकता मदों में स्वास्थ्य, शिक्षा, वस्त्र, टिकाऊ वस्तुएँ आदि पर व्यय शामिल होता है। वर्तमान में, सभी गरीबी की रेखा संबंधी आँकड़े उक्त विधि (MRP) का प्रयोग कर ही संकलित किए जाते हैं। पूर्ववर्ती (MMRP) विधि में, कुछ खाद्य वस्तुओं के लिए, किसी 30 की बजाय एक 7-दिवस ही अपनाया जाता है। माना जाता है कि यह उपभोग संबंधी खर्चों का कहीं अधिक सटीक चित्र प्रस्तुत करता है। नई विधि से आँकड़े एकत्र करके देखा गया है कि ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में उपभोग व्यय 10 प्रतिशत से 12 प्रतिशत बढ़ गया है। यह दर्शाता है कि लोग 30 दिन की लंबी अवधि की बजाय 7 दिन की छोटी-सी अवधि में हुए अपने खाद्य व्यय को बेहतर याद कर बता सकते हैं। गरीबी की रेखा के इर्द-गिर्द उच्च जनसंख्या घनत्व के साथ पहले से अधिक खर्च का अर्थ है कि भारत में गरीबी की दर (वर्ष 2011-12 हेतु) तेज़ी से नीचे आई है। राज्यों के हिसाब से, झारखंड, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल व ओड़िशा के लिए उपभोग में ग्रामीण-शहरी अंतर अधिक है। अंतर ग्रामीण MPCE के 90 प्रतिशत से अधिक है), जबकि बिहार, केरल व पंजाब में अंतर 35 प्रतिशत से भी कम है। समस्त भारत हेतु औसत ग्रामीण-शहरी अंतर भी 82 प्रतिशत है। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि ग्रामीण भारत हेतु मासिक प्रतिव्यक्ति व्यय (MPCE) वर्ष 1993-94 में रु.160/- से वर्ष 2011-12 में रु.220/- तक बढ़ा है (स्थिर 1987–88 कीमतों पर)। शहरी भारत के ये आँकड़े 265 व 400 हैं। ग्रामीण-शहरी अंतर, तद्नुसार, वर्ष 1993-94 में 65 प्रतिशत 2011-12 में 82 प्रतिशत तक बढ़ा है।

गिनी गुणांक : आय एवं उपभोग की विषमताएँ मापने हेतु यही व्यापक रूप से प्रयुक्त विधि है। यह अपने अवयवों के वितरण में किसी भी चर की विषमता में संकेंद्रण की कोटि को मापता है। यह अपनी सीमाओं में 0 से 1 के बीच क्रमबद्ध होता है, जहाँ यह

समाज में संपूर्ण समानता होने पर 'शून्य' मान धारण कर लेता है। गिनी-गुणांक लॉरेंज़ वक्र हेतु संक्षिप्त आँकड़े देता है, जो कि पहले उपभोग/आय के विभिन्न स्तरों के अनुसार जनसमुदाय को श्रेणीबद्ध करता है और फिर 'उपभोग/आय के उस स्तर का लाभ उठा रहे जनसमुदाय के संचयी अनुपात के सामने उपभोग/आय का संचयी अनुपात' अंकित करता है (चित्र 9.1)। गिनी-गुणांक उस समय 1 का सैद्धांतिक अधिकतम मान ले लेता है जब किसी जनसमुदाय में एक को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति का आय स्तर शून्य हो। गिनी-गुणांक निम्नवत् आकलित किया जाता है– ***G***= **क्षेत्रफल** *AEDF*/**क्षेत्रफल** *AEDB* चूँकि यह शून्य और एक के बीच अवस्थित होता है, सूचंकाक के शून्य से एक तक विचलन करने पर विषमता बढ़ती है। आनुभविक अभ्यास-कार्यों में गिनी-गुणांक निम्नलिखित सूत्र द्वारा आकलित किया जाता है–

$$G = \frac{1}{n}\left[n + 1 - 2\left(\frac{\sum_{i=1}^{n}(n+1-i)Yi}{\sum_{i=1}^{n} Yi}\right)\right]$$

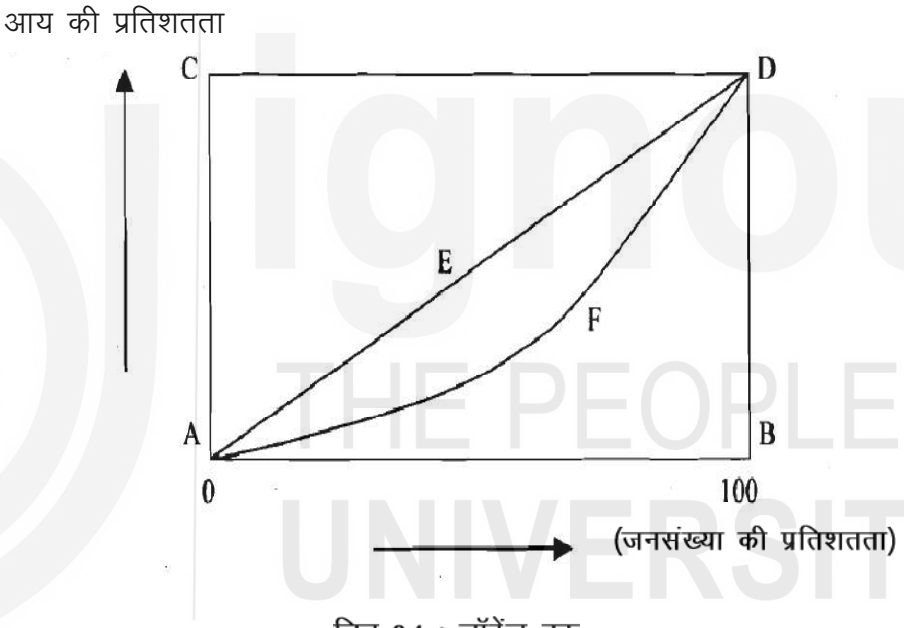

चित्र 9.1 : लॉरेंज़ वक्र

9.3.3 पोषणिक विषमता

शरीर की पोषणिक आवश्यकताओं और शरीर द्वारा पोषण के अवशोषण के बीच अंतर कुपोषण के विस्तार के रूप में लिया जाता है। कुपोषण व उसके मापन में अंतर्निहित संकल्पनाओं पर हम इकाई 7 (उपभाग 7.2.1) में पहले ही चर्चा कर चुके हैं। स्मरण करें, न्यून-पोषण कम वज़न, रुद्ध विकास एवं क्षय रोग जैसे संकेतकों से मापा जाता है *क्षयरोग* प्र्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता को ही दर्शाता है। वे बच्चे जिनका कदवार वज़न (WAZ) संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से ऋण तीन मानक विचलन (–3 SD) नीचे हो, *गंभीर रूप से क्षयरोग ग्रस्त* माने जाते हैं और वे जो –2 SD से नीचे हों, *क्षयरोग ग्रस्त*। उम्रवार कद (HAZ) सूचकांक रैखिक वृद्धि मंदन एवं संचयी वृद्धि न्यूनता का संकेतक होता है। वे बच्चे जिनका उम्रवार कद Z-समंक संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से –2 SD नीचे हो, *रुद्ध विकसित* अथवा अतीव कुपोषित माने जाते हैं। इसी प्रकार, जब यह Z-समंक –3 SD से नीचे तो बच्चे को गंभीर रूप से रुद्ध विकसित अथवा दीर्घकालिक रूप से कुपोषित माना जाता है। रुद्ध विकास एक

लंबी अवधि तक पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में विफलता दर्शाता है और पुनरावर्त्तक एवं दीर्घकालिक रोग से प्रभावित होता है। उम्रवार वज़न उम्रवार क़द और क़दवार वज़न का एक संश्लिष्ट सूचकांक है जो अतीव एवं दीर्घकालिक, दोनों प्रकार के कुपोषण को दर्शाता है। वे बच्चे जिनका उम्रवार वज़न संदर्भ जनसंख्या की माध्यिका से –2 SD नीचे हो, *कम वज़न* माने जाते हैं। बच्चों के बीच दीर्घावधि कुपोषण पर नियंत्रण करने के लिए, *रुद्ध विकास* को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मापदंड माना जाता है। विभिन्न राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) रिपोर्टों के अनुसार, *रुद्ध विकास* को छोड़कर, भारत में कुपोषण स्तर वर्ष.दर.वर्ष अन्य सभी पहलुओं से गिरता जा रहा है। यह स्थिति भयप्रद है क्योंकि यह कुपोषण का दीर्घावधि प्रभाव इंगित करता है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) 'परिणाम में विषमता' और 'अवसर में विषमता' के बीच भेद दर्शाते हुए विषमता को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्या आप मानते हैं कि भारत में हाल के वर्षों में विषमता बढ़ी है? क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

3) 'क्षैतिज विषमता' और 'अनुलंब विषमता' के बीच अंतर स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

4) इस बात के कारण दें कि क्यों क्षैतिज एवं अनुलंब प्रकार की विषमताओं को कम किए जाने पर ध्यान देना ज़रूरी है।

.....

.....

.....

.....

5) भारत को एक सर्वाधिक विषमताग्रस्त अर्थव्यवस्था के रूप में क्यों देखा जाता है? इस स्थिति के लिए दोषी कारण कौन-से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

6) वे छह वर्ग बताइए जिनमें भारत के भूमिहीनों को बाँटा गया है। सामाजिक समूहों द्वारा इन छह वर्गों का वितरण क्या इंगित करता है? इसके क्या परिणाम हुए हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7) भारत में उपभोग विषमता कैसी मापी जाती है? इसका रुझान क्या दर्शाता है?

.....

.....

.....

.....

8) उपभाग 9.3.2 में आपने कर्नाटक जैसा कि प्रगतिशील राज्य देखा जो कि झारखंड, पश्चिम बंगाल व ओड़िशा जैसे अपेक्षाकृत मंद प्रगतिशील राज्यों के साथ सहभागी है तथा बिहार जैसा एक अपेक्षाकृत मंद प्रगतिशील राज्य जो केरल व पंजाब जैसे अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील राज्यों के साथ सहभागी है। आपके अनुसार, इसके लिए क्या संभावित कारण हो सकता है?

.....

.....

.....

.....

9) बच्चों के बीच दीर्घावधि कुपोषण पर कैसे नियंत्रण किया जाता है? भारत में इस संबंध में क्या रुझान रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

9.4 क्षेत्रीय विषमता

नव-प्रतिष्ठित संवृद्धि सिद्धांत के अनुसार, पूँजी की वृद्धि के आरंभिक चरणों में पूँजी की सीमांत उत्पादकता श्रम अवशोषण में अनुकूल गिरावट के साथ बढ़ रही होगी। तथापि, अंततोगत्वा, यदि यह श्रमवर्धक तकनीकी प्रगति में परिणत होता हो तो श्रम अवशोषण का ह्रासमान प्रभाव विपरीतगामी हो जाएगा। परिणामतः, विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिव्यक्ति आय बढ़ेगी और यदि सभी राज्य/क्षेत्र संवृद्धि की अग्रसक्रिय नीतियों का अनुसरण करते हों तो संवृद्धि दरें किसी स्थिर अवस्था की ओर अभिसरित होने की प्रवृत्ति दर्शाएगी। दूसरे शब्दों में, यह कालांतर में उन क्षेत्रों के बीच आय विषमता में गिरावट में परिणत होगा इससे उस स्थिति में 'अपसरण अथवा अभिसरण' की प्राक्कल्पना की परीक्षण संबंधी प्रश्न सामने आएगा जहाँ विभिन्न राज्य अनुसरण की जा रही अपनी नीतियों की प्रबलता के कारण अपने राज्य घरेलू उत्पाद (SDP) में भिन्न.भिन्न संवृद्धि दरों का अनुभव कर रहे होंगे। इस संदर्भ में, चिंताएँ व्यक्त की गईं है कि भारत में क्षेत्रीय विषमता वर्ष 1991 में आर्थिक सुधार लागू होने के बाद बढ़ी है। कुछ अध्ययन इन चिंताओं का समर्थन करते हैं, कुछ अन्य समर्थन नहीं करते। इस प्रकार की स्थिति में, इस संबंध में क्या निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं? इस भाग में, क्षेत्रीय विषमता में अपसरण के विषय पर 'जीवन-स्तर' और 'कार्य क्षेत्रीय संवृद्धि' के लिहाज़ से चर्चा की जाएगी।

9.4.1 जीवन-स्तर

परिकलित गिनी गुणांकों के परिणामों का प्रयोग कर अनेक अध्ययनों से यह रिपोर्ट सामने आई है कि 1980 व 1990 के दशकों जैसी किसी भी दीर्घावधि हेतु राज्यों में तमाम ग्रामीण एवं शहरी कुटुंबों के बीच भारत में राज्य घरेलू उत्पाद के लिहाज़ से विषमता बढ़ने का कोई निर्णायक साक्ष्य नहीं मिलता। तथापि, आर्थिक सुधार लागू होने के बाद के वर्षों (1993–2000) जैसी छोटी-सी समयावधि में, कुछ राज्यों ने बढ़ी शहरी विषमता दर्ज की है। खासकर ग्रामीण कुटुंबों में, आय के लिहाज से भी, जबकि कुछ अध्ययनों ने राज्य घरेलू उत्पाद के लिहाज से कुछ राज्यों के बीच अभिसरण दर्शाया है, ऐसे अध्ययन भी हैं जिनमें विपरीत अर्थात् अपसरण की रिपोर्ट है। स्पष्ट रूप से, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम विकसित राज्यों की तुलना प्रगतिशील राज्यों से कर रहे हैं अथवा हम तीव्र विकासमान राज्यों की तुलना मंद विकासमान राज्यों से कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, केवल प्रतिव्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (SDP) का अध्ययन कर प्रस्तुत किए गए असमान परिणाम ही कुछ राज्यों के बीच अभिसरण और कुछ अन्य के बीच अपसरण दर्शाते असमान रुझान प्रस्तुत करने वाले होते हैं। इसके अलावा, यह केवल आय को ही संवृद्धि का एकमात्र मापदंड मानने पर आधारित होगा। दूसरी ओर, यदि कोई संसूचकों के किसी संश्लिष्ट समुच्चय के पदों में मापित क्षेत्रीय विषमता को प्रतिव्यक्ति व्यय, जनगणना गरीबी अनुपात, साक्षरता दर, औपचारिक शिक्षा नामांकन, शिशु मर्त्यता दर, जीवन-प्रत्याशा, पेयजल की सुलभता एवं अपेक्षाकृत स्थायी सामग्रियों से बनाए गए आवास की सुलभता के रूप में देखता हो तो परिणाम अधिक विश्वसनीय होंगे। जैसा कि हम जानते हैं, वर्तमान में, तीन संसूचकों, यथा जीवन-प्रत्याशा, शिक्षा एवं प्रतिव्यक्ति आय का प्रयोग कर तैयार किया गया मानव विकास सूचकांक (HDI), लोगों के 'जीवन-स्तर' के मापदंड स्वरूप प्रयोग किया जाता है। यही इसके लिए सर्वोत्तम विकल्प होता है। उक्त सूचकांक (HDI) पर आधारित विश्लेषण दर्शाता है कि 1990 के दशक के पश्चात् भारत में, जीवन-स्तर राज्यों में

आमतौर पर गिरा नहीं है। तथापि, क्षेत्रों के बीच, अपसरण निम्नलिखित के संदर्भ में देखा जाता है–

- उदारीकरण के बाद पूर्व-पश्चिम अपसरण दिखाई दिया है, जहाँ देश के पश्चिमी भाग ने आय का अपना अंश बढ़ाया है। परंतु, सापेक्ष आय अंशों के लिहाज से कोई सशक्त उत्तर-दक्षिण विभाजन देखने में नहीं आया है;
- अधिकांश क्षेत्र जो बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं, देश के शहरी भागों में हैं; यथा, ग्रामीण भारत सापेक्ष पदों में कम लाभान्वित हुआ है;
- उदारीकरण ने वर्षा-सिंचित कृषिगत क्षेत्रों में सुधार नहीं किया है; और
- जबकि कुछ राज्य सभी क्षेत्रों में निरंतर अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं (यथा, कर्नाटक, केरल, पंजाब एवं हरियाणा), अन्य ऐसे भी हैं जो अपने प्रदर्शन में विषमताओं से पहचाने जाते हैं (यथा, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र)।

9.4.2 क्षेत्रीय अपसरण

प्रमुख क्षेत्रों (यथा, कृषि, उद्योग एवं सेवा) के जरिए विश्लेषण करते हुए, कुछ अध्ययनों में सामने आया है कि सुधारों में कृषि क्षेत्र हेतु क्षेत्रीय विषमता पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ा है। परंतु, जहाँ तक उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों का संबंध है, सुधारों ने 1980 के दशक के दौरान देखे गए नियत रुझानों से 1990 के दशक के दौरान देखे गए तीव्रता से बढ़ते रुझानों तक सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में उनके योगदानों के लिहाज से पूरी तरह उन रुझानों को बदल दिया है। कृषि क्षेत्र के लिए, दूसरी ओर, क्षेत्र के ही भीतर क्षेत्रीय विषमता में एक किंचित् परिवर्तित ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति देखी गई है। इस ऊर्ध्वमुखी रुझान के बावजूद, इसके सापेक्ष आकार में एक सशक्त गिरावट ने यह सुनिश्चित कर दिया है कि क्षेत्रीय विषमता में इस क्षेत्र का योगदान 1980 व 1990 के दोनों ही दशकों में लगभग स्थिर रहा है। इस क्षेत्र में क्षेत्रीय विषमता में वर्धमान रुझान को अंशतः एक प्रबलतर कृषि आधार वाले कुछ राज्यों (जैसे मध्यप्रदेश, आंध्र प्रदेश एवं असम) में कृषि की उच्च संवृद्धि दर के कारण और अंशतः बिहार एवं ओड़िशा जैसे कृषि में पिछड़े राज्यों में इस क्षेत्र की गतिहीनता एवं संकुचन के कारण माना जाता है। चूँकि कृषि उत्पादन की अवस्थिति उर्वर भूमि पर निर्भर होती है, उक्त अपसरण पुस्तकों में चर्चा किए जाने वाले 'संकुलन प्रभाव' के जरिए स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस अपसरण हेतु एक अन्य सत्य-प्रतीयमान व्याख्या यह हो सकती है कि अपेक्षाकृत अधिक संपन्न कृषि-राज्यों के पास सिंचाई, माल-गोदाम, शीत संग्रहागार व अन्य अवसंरचनाओं में आवश्यक निवेश करने के लिए अधिशेष होता है जो इन राज्यों में कृषि की संवृद्धि दर को कायम रखता है, जबकि कुछ गरीब राज्य अधिशेष शून्यता के साथ यथेष्ट निवेश के अभाव में या तो गतिहीन रहे या फिर संकुचित होते गए।

जहाँ तक उद्योग एवं सेवाक्षेत्रों का संबंध है, इन दो क्षेत्रों के सापेक्ष आकार एवं अर्थव्यवस्था से उनके अंतरानुबंधनों के कारण, सुधार पूर्व अवधि में क्षेत्रीय विषमता में कमी देखी गई, परंतु सुधारोपरांत अवधि में स्पष्ट बढ़ोतरी हुई है। दूसरे शब्दों में, उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों ने अपकेंद्री प्रभाव (यथा, तीव्रता संचार) के कारण सुधारों से पूर्व विषमता में गिरावट और सुधारोपरांत अधिकेंद्री प्रभाव (यथा, यशद (जस्ता) लेपन प्रभाव) के कारण उसमें बढ़ोतरी दर्ज़ करवाई। इसके लिए कारण बहुविध कार्य-दिशाओं के माध्यमों से उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों के विस्तार पर ध्यान केंद्रित कर क्षेत्रीय अपसरण पर नियंत्रण रखने हेतु सुधार-पूर्व अवधि में सरकार की नीति को ही माना

जाता है। एक कार्य-दिशा ने सार्वजनिक क्षेत्र में भूमिका निभाई, जहाँ सार्वजनिक निवेशों का एक काफ़ी बड़ा हिस्सा अपेक्षाकृत पिछड़े इलाकों में लगाया गया। दूसरी कार्य-दिशा ने निजी क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाई, जिसे उक्त इलाकों में निवेश करने के लिए, राजकोषीय प्रोत्साहनों एवं औद्योगिक अनुज्ञापन (लाइसेंसिंग) का प्रयोग कर प्रोत्साहित किया गया। दूसरे शब्दों में, जबकि सरकार ने सुधार पूर्व अवधि में, इन दो क्षेत्रों में विषमता घटाने में एक निर्णायक भूमिका निभाई, सुधारोपरांत अवधि में, उद्योग एवं सेवा क्षेत्र के विस्तार से सामने आए इस अपसरण में योगदान दिया, जिसके कारण निम्नलिखित रहे– (i) औद्योगिक अनुज्ञापन प्रणाली का विमोचन, जिसने निजी क्षेत्र को अपना स्थान चुनने और परिवहन लागतें न्यूनतम करने की आज़ादी दी, जिससे उनके उत्पादन आधार का संपन्नतर राज्यों में महानगरीय क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण तेज़ हो गया; (ii) सुधारों में निर्यातोन्मुखी उत्पादन को बढ़ावा दिया, जिसने सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अनुपात में निर्यात का अंश 1980 के दशक में 8.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 1990 के दशक में लगभग 15.5 प्रतिशत कर देने में योगदान दिया; (iii) विनिर्माण निर्यात क्षेत्र ने स्वयं को आम अवसंरचना वाले तटीय क्षेत्रों के निकट अवस्थित करना पसंद करके अपनी परिवहन लागतें अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों के मुताबिक न्यूनतम कर लीं। चूँकि ये सुविधाएँ अधिकांशतः देश के पश्चिमी एवं दक्षिणी भागों में सापेक्ष रूप से विकसित राज्यों में उपलब्ध थीं, अतः, इन राज्यों व इनसे गरीब राज्यों के बीच क्षेत्रीय विषमता को बढ़ावा मिला है।

सेवा क्षेत्र में औसत निर्यात में 1980 के दशक में 4 प्रतिशत से 1990 के दशक में 5.5 प्रतिशत तक की मामूली वृद्धि हुई। सेवा क्षेत्र के ये घटक इन निर्यात गतिविधियों से लाभान्वित हुए थे : सूचना प्रौद्योगिकी एवं वित्त-सेवाएँ। चूँकि इन दोनों क्षेत्रों को उच्च रूप से विकसित दूर संचार अवसंरचना एवं उच्च गुणवत्ता संपन्न मानव पूँजी की आवश्यकता थी, और ये दोनों ही महानगरीय इलाकों में उपलब्ध थे, इन इलाकों में उक्त क्षेत्रों की संवृद्धि ने अपेक्षाकृत अल्पविकसित क्षेत्रों तथा अपेक्षाकृत अधिक संपन्न क्षेत्रों के बीच विषमता में अंतर बढ़ाने में योगदान दिया। इसके अलावा, सुधारों ने निजी क्षेत्र का ध्यान जनोपयोगी सेवाएँ एवं अवसंरचना प्रदान करने की ओर मोड़ने में योगदान दिया। इससे कुल औद्योगिक सकल घरेलू उत्पाद में बिजली, गैस व जल (यथा, जनोपयोगी सेवाएँ) का औसत अंश बढ़ गया, जो कि 1980 के दशक में लगभग 24 प्रतिशत से बढ़कर 1990 के दशक में लगभग 32 प्रतिशत तक चला गया। इसी प्रकार, बैंकिंग एवं बीमा (अर्थव्यवस्था की वित्तीय अवसंरचना का एक भाग) का औसत अंश 1980 के दशक में लगभग 13 प्रतिशत से बढ़कर 1990 के दशक में लगभग 20 प्रतिशत हो गया। चूँकि जनोपयोगी सेवाएँ एवं अवसंरचना की मांग विकसित क्षेत्रों में अधिक होती है, इन सेवा क्षेत्रों की ओर सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश के अंतरण ने सार्वजनिक निवेशों के माध्यम से क्षेत्रीय अपसरण पर नियंत्रण रखने को सरकार की क्षमता को कम कर दिया।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें।)

1) राज्य घरेलू उत्पाद (SDP) पर आधारित क्षेत्रीय कार्य-प्रदर्शन का विश्लेषण क्या दर्शाता है? क्या यह विश्वसनीय है? यदि नहीं, तो विभिन्न राज्यों द्वारा की गई क्षेत्रीय कार्य-निष्पत्तियों का अध्ययन करने का क्या विकल्प है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) किन पहलुओं से भारतीय राज्यों के बीच विषमता में अपसरण पाया जाता है?

.....

.....

.....

.....

3) क्षेत्रीय वर्णनों के संदर्भ में, सुधारपूर्व एवं सुधारोपरांत अवधियों की तुलना करते हुए, क्षेत्रीय विषमता के लिहाज से कृषि क्षेत्र का क्या अनुभव रहा है?

.....

.....

.....

.....

4) भारत में राज्यों के बीच कृषि विकास में देखी गई विषमता हेतु सामने आए कोई कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

5) अंतर्क्षेत्रीय विषमता (बढ़ाने अथवा हटाने) के प्रत्याशित अपसरणकारी अथवा अभिसरणकारी स्वभाव पर 'उद्योग एवं सेवा' क्षेत्रों के लिहाज से राज्यों के बीच क्या रुझान देखा गया है?

.....

.....

.....

.....

6) वे तीन कारण बताइए जिन्होंने उन राज्यों के बीच क्षेत्रीय विषमता बढ़ाने में योगदान दिया जिन्होंने उच्च वृद्धि दर्ज़ करवाई और जिन्होंने निम्न वृद्धि दर्ज़ करवाई।

.....

.....

.....

.....

.....

7) सेवा क्षेत्र के वे तीन घटक कौन-से हैं जिन्होंने ऐसी उच्चतर संवृद्धि में योगदान दिया जिसके परिणामस्वरूप अंतर्क्षेत्रीय विषमता बढ़ी? इन तीन घटकों ने सुधार-पूर्व एवं सुधारोपरांत वर्षों के बीच अपने सापेक्ष सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अंशों के पदों में कितना लाभ पहुँचाया?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.5 सार-संक्षेप

विषमता अनेक प्रकार की हो सकती है। स्थूलतः, इसे आर्थिक और सामाजिक विषमता में वर्गीकृत किया जा सकता है। पूर्ववर्ती के संबंध में, आय, उपभोग एवं पोषण में विषमताएँ देखी जाती हैं। परवर्ती के संबंध में, राजनीतिक एवं अवसर विषमताएँ देखी जाती हैं। विशिष्ट रूप से, अवसरों में विषमताएँ, जो परिणाम में विषमता के रूप में परिणत होती हैं, 'शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं' की सुलभता अथवा अभाव के रूप में पहचानी जा सकती हैं और अधिक विभेद क्षैतिज विषमता तथा अनुलंब विषमता के बीच किया जा सकता है। पूर्ववर्ती का अर्थ है– जाति, धर्म, सजाति आदि सरीखे कारकों के आधार पर समूहों के बीच विषमताएँ, जबकि परवर्ती का अर्थ है– कुटुंबों अथवा व्यक्तिजन में विषमता। उपभोग एवं पौषणिक विषमताएँ अविकसित वृद्धि वाली जनसंख्या की ओर प्रवृत्त करती हैं, जो कि राष्ट्र की उत्पादनशीलता एवं संवृद्धि पर भारी प्रभाव डालता है। कुल मिलाकर, विभिन्न प्रकार की विषमताएँ जनसमुदाय के जीवन-स्तर अथवा सामाजिक-आर्थिक क्षेम को प्रभावित करती हैं। भारत में, हाल के वर्षों में, आय-विषमता में अपसरण के साक्ष्य मिले हैं, परंतु उपभोग-विषमता में अभिसरण भी दिखाई दिया है। इसका अर्थ है कि सभी क्षेत्र फले-फूले परंतु कुछ दूसरों से अधिक तेज़ी से फले-फूले। इसके परिणामस्वरूप देखा गया है कि भारतीय राज्यों के बीच क्षेत्रीय विषमता में 'अपसरण' अनुभव किया गया है। यह समुक्ति सुधारोपरांत वर्षों में सामने आई, जिसने औद्योगिक अनुज्ञापन नीतियों में छूट के कारण निजी क्षेत्र की उत्पादनशील ऊर्जा को निर्मुक्त कर दिया। सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश में भी एक मोड़ देखा गया। सुधारपूर्व वर्षों में कृषि एवं पिछड़े क्षेत्र से हटकर सुधारोपरांत वर्षों में 'अवसंरचना एवं जनोपयोगी सुविधाओं' के क्षेत्र में निवेश। चूँकि इस प्रकार के निवेश भौगोलिक अथवा अवसंरचनात्मक आधारों के पदों में कुछ राज्यों/क्षेत्रों में बेहतर प्रदान किए गए हैं, पिछड़े तथा प्रगतिशील राज्यों के बीच विषमता हाल के दो दशकों में बढ़ा ही है। भारतीय अर्थव्यवस्था की यही विशेषता है जिसे अंतर-क्षेत्रीय दृष्टिकोण से 'विषमता में अपसरण' की संज्ञा दी जाती है।

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Ahluwalia, Montek S (2000). "Economic Performance of States in Post-Reforms Period." *Economic and Political Weekly*: 1637-1648.

2) Kar, Sabyasachi, and S. Sakthivel (2007). "Reforms and Regional Inequality in India." *Economic and Political Weekly*: 69-77.

3) Piketty, Thomas (2015). *The Economics of Inequality,* Harvard University Press.

4) Rao, M. Govinda, Richard T. Shand, and Kali P. Kalirajan (1999). Convergence of Incomes Across Indian States: A divergent view, *Economic and Political Weekly*: 769-778.

5) Ravallion, Martin (1997). Can High-Inequality in Developing Countries Escape Absolute Poverty?, *Economics Letters* 56, No. 1: 51-57.

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक प्रस्थिति और धन-संपत्ति में अंतर के रूप में परिभाषित, पूर्ववर्ती लोगों की अक्षमता, सजातीय पृष्ठभूमि एवं लिंग पर निर्भर करता है जबकि परवर्ती सरकार द्वारा 'सही' या 'उपयुक्त' होने के रूप में एक सर्वमान्य आरंभ.बिंदु सुनिश्चित करने से ताल्लुक रखता है।

2) 'अस्सी के दशक में, कुल राष्ट्रीय आय का लगभग एक-तिहाई उच्च-आय उपार्जकों में 10 प्रतिशत के ही स्वामित्व में था। परंतु, हाल के वर्षों में, यह अनुपात 50 प्रतिशत से भी ऊपर चला गया है।

3) क्षैतिज विषमता का अर्थ है– सांस्कृतिक रूप से परिभाषित अथवा निर्मित समूहों के बीच विषमता। अनुलंब विषमता का अर्थ है– व्यक्तिजन अथवा कुटुंबों के बीच विषमता।

4) माना जाता है कि क्षैतिज विषमता का पोषण जनसमुदाय में गरीबी के स्तर बढ़ाना विकास करता है। अनुलंब विषमता एक न्यायोचित समाज के निर्माण, गरीबी के स्तरों में कमी लाने, अर्थव्यवस्था की तीव्रतर संवृद्धि में मदद करने, समाज में अपराध-वृत्ति की कोटि नीचे लाने, आदि पर प्रभाव डालती है।

5) करोड़पतियों के पास देश की आधे से भी अधिक राष्ट्रीय आय है, जबकि औसत भारतीय अपेक्षाकृत गरीब है। आमतौर पर प्रमुख कारण हैं – (i) उच्च रूप से असमान परिसम्पत्ति वितरण; (ii) अपर्याप्त रोज़गर सृजन; तथा (iii) विभेदीय क्षेत्रीय विकास।

6) भूमिहीन, सीमांत, लघु, अर्ध-मध्यम, मध्यम एवं वृहद् अर्थात् बड़े किसान। सामाजिक श्रेणी के अंदर भूमि.वितरण 0.6 से 0.8 तक एक उच्च गिनी शृंखला दर्शाता है जो कि SC, ST एवं OBC जैसे कमज़ोर तबकों के बीच उच्च विषमता इंगित करती है। ऐसी उच्च आय विषमता के परिणाम होते हैं– (i) वर्ग संघर्ष; (ii) राजनीतिक अधिपत्य; (iii) शोषण; (iv) एकाधिकार का जन्म; आदि।

7) रुपयों में मापे गए मासिक प्रतिव्यक्ति व्यय (MPCE) के माध्यम से। समय-समय पर स्थिर कीमतों में मापे गए उक्त व्यय (MPCE) में एक स्थिर वृद्धि देखी गई है। परिणामतः, गरीबी की रेखा से नीचे बसर करने वाले लोगों के अनुपात में एक बड़ी गिरावट आई है। तथापि, ऐसे राज्य भी हैं जहाँ शहरी और ग्रामीण

उक्त व्यय (MPCE) के बीच अंतर 90 प्रतिशत से भी अधिक भिन्नता दर्शाता है। अखिल भारतीय स्तर पर भी यह अंतर 84 प्रतिशत है।

8) कर्नाटक में, शहरी उक्त व्यय (MPCE) बहुत अधिक है। इसी प्रकार, बिहार में, ग्रामीण एवं शहरी दोनों उक्त व्यय (MPCE) बहुत निम्न हैं। इसके परिणामस्वरूप, ये राज्य ऐसे राज्यों की गिनती में शामिल हैं जिनके साथ इनको तलाश कर पाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। परंतु यह अभिलक्षण अंतर को विश्वासोत्पादक ढंग से स्पष्ट करता है और इस प्रकार उनका स्थान कहीं खोता नहीं है। यह उदाहरण आनुभविक आँकड़ों की व्याख्या से पूर्व सावधानीपूर्वक प्रेक्षण किए जाने की आवश्यकता की ओर संकेत करता है।

9) 'रुद्ध विकास' को एक संकेतक के रूप में प्रयोग कर। इस संबंध में स्थिति भयप्रद है क्योंकि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्टों की विभिन्न अवधियों में इसमें कोई कमी नहीं आई है और यह कुपोषण का दीर्घावधि प्रभाव इंगित करता है जो कि भारत में नीचे नहीं आ रहा है।

बोध प्रश्न 2

1) यह कुछ मामलों में अपसरण दर्शाता है और कुछ अन्य में अभिसरण। केवल आय पर आधारित, यही बात बाध्यकारी है। मानव विकास सूचकांक जैसा कोई भी संसूचक एक व्यापक मूल्यांकन हेतु अपनाया जाना बेहतर होगा।

2) पूर्व-पश्चिम अपसरण के साक्ष्य मिलते हैं, परंतु उत्तर-दक्षिण राज्यों में ऐसा कोई अपसरण नहीं दिखाई पड़ता। ग्रामीण भारत अपेक्षाकृत कम लाभान्वित हुआ है। कृषिगत वर्षा-सिंचित क्षेत्र पिछड़े रहे हैं।

3) क्षेत्रीय विषमता में एक किंचित् परिवर्तित ऊर्ध्वमुखी रुझान देखा जाता है। परंतु स्वयं कृषि.क्षेत्र का संकुचित आकार होने के कारण वृद्धि सुस्पष्ट नहीं है, बल्कि कमोबेश गतिहीन रही है।

4) एक, कृषि के लिहाज़ से कमज़ोर राज्यों में अनुभव किए गए अनुरूप संकुचन के साथ कुछ राज्यों में अपेक्षाकृत सशक्त कृषि.आधार। दो, पूर्ववर्ती के पास वांछित अवसंरचना में निवेशार्थ अधिशेष भी था जो कि परवर्ती के पास नहीं था।

5) प्रभावों की दो संकल्पनाएँ, यथा अभिकेंद्री प्रभाव तथा अपकेंद्री प्रभाव, भारतीय राज्यों के बीच 'उद्योग एवं सेवाओं' की वृद्धि में रुझान का वर्णन करने के लिए प्रयोग की जाती हैं। पूर्ववर्ती का संदर्भ सुधारपूर्व अवधि में निम्न निवेश के कारण 'मांग के प्रतिसरण प्रभाव' हेतु लिया जाता है। परवर्ती का संदर्भ उदारीकरण उपायों द्वारा शुरू की गई अग्रसक्रिय नीतियों के कारण 'माँग में उछाल' हेतु लिया जाता है।

6) अनुज्ञापन अर्थात् लाइसेंसिंग को सुधारपूर्व वर्षों में उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए पिछड़े इलाकों को संसाधन मुहैया कराने हेतु एक साधन स्वरूप प्रयोग किया गया। इसने विषमता की प्रवृत्तियों को कहीं अधिक संतुलित रखा। किंतु सुधार वर्षों में, इसके विमोचन ने उन इलाकों में निवेश किए जाने की ओर प्रवृत्त किया जहाँ बेहतर अवसंरचना थी (यथा, अपकेंद्री

प्रभाव), जो कि महानगरीय शहरों व सम्पन्नतर राज्यों के अन्य भागों में ही दृष्टिगत होती थी। तटीय क्षेत्रों ने भी प्रति-सुधार औद्योगिक प्रोत्साहन नीतियों के तहत लाभ उठाया, जबकि अलाभान्वित राज्यों को यह भौगोलिक लाभ प्राप्त नहीं था।

7) सूचना प्रौद्योगिकी, जनोपयोगी सुविधाएँ एवं अवसंरचना तथा बैंकिंग एवं बीमा। सकल घरेलू उत्पाद में उनके अपने-अपने अंश में वृद्धि, सुधार पूर्व एवं सुधारोपरांत वर्षों के बीच रही 4–5.5 प्रतिशत, 24–32 प्रतिशत तथा 13–20 प्रतिशत।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 रोज़गार और बेरोज़गारी*

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 विषय प्रवेश

10.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

10.2.1 रोज़गार

10.2.2 बेरोज़गारी

10.2.3 कार्यबल भागीदारी दर एवं श्रमबल भागीदारी दर

10.3 रोज़गार नीतियाँ

10.3.1 1950 के दशक से वर्ष 2002 तक

10.3.2 वर्ष 2002 के उपरांत

10.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

10.4.1 असंगठित कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा

10.5 सार-संक्षेप

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- किसी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में रोज़गार का महत्त्व और उसके मापन में कठिनाइयाँ बता सकें;
- रोज़गार एवं बेरोज़गारी संबंधी विभिन्न संकल्पनाओं को परिभाषित कर सकें;
- 'कार्यबल भागीदारी दर' (WFPR) और 'श्रम बल भागीदारी दर' (LFPR) के बीच भेद कर सकें;
- 1950 के दशक से लेकर वर्ष 2002 के बीच भारत में अपनाई गई रोज़गार नीतियों के प्रमुख अभिलक्षणों पर चर्चा कर सकें;
- वर्ष 2002 के उपरांत वर्षों के दौरान भारत में रोज़गार नियोजन में किए गए परिवर्तनों का वर्णन कर सकें;
- 'अनौपचारिक अर्थव्यवस्था' की संकल्पना की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें; और
- हाल के वर्षों में भारत में असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों के लिए बनीं सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को सूचीबद्ध कर सकें।

*प्रो. बी.एस. प्रकाश, इं.गां.रा.मु.वि., नई दिल्ली एवं डॉ. असीम करमाकर, जादवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता

10.1 विषय प्रवेश

रोज़गार अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। यह किसी भी कुटुंब को वह आय अर्जित करने हेतु मूल साधन प्रदान करता है जिसमें से उसके व्यय का अर्थ प्रबंध किया जाता है। यह बच्चों को शिक्षित करने हेतु साधन प्रस्तुत करता है, जो कि संभावित भावी कार्यबल के रूप में राष्ट्र को उसकी मानव पूँजी निर्मित करने के प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होगा। खाद्य एवं पोषण संबंधी ज़रूरतों पर खर्च कर यह किसी भी उत्पादनकारी कुटुंब हेतु वांछित स्वास्थ्य के अनुरक्षण में सहायता करता है। मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद, बचत राष्ट्र के निवेश का एक महत्त्वपूर्ण घटक बन जाती है जो कि आगे आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया में सहायक होती है। इससे अर्थव्यवस्था के अन्य कई क्षेत्रों में प्रवर्धक लाभ होते हैं। किसी राष्ट्र का आर्थिक स्वास्थ्य घरेलू बचत के विस्तार (सकल घरेलू उत्पाद GDP के प्रतिशत रूप में व्यक्त) और 'बेरोज़गारी' की निम्न दर द्वारा इंगित किया जाता है। किसी अर्थव्यवस्था के लिए यह इसीलिए आवश्यक है कि अपनी रोज़गार आवश्यकताओं का आवधिक मूल्यांकन करके रखे। वांछित प्रकार का रोज़गार उत्पन्न करना अर्थव्यवस्था की उपयुक्त संरचना पर निर्भर करता है, विशेषकर, उसके कार्यबल के कौशल संयोजन के लिहाज़ से, कोई भी महत्त्वपूर्ण नीति निर्णय अपनाई जाने वाली श्रम-गहन एवं पूँजी-गहन उत्पादन विधियों के मिश्रण पर निर्भर करता है। इस बात पर ध्यान देना बहुत महत्त्वपूर्ण होगा कि रोज़गार एक परिणामकारी कारक होता है (यथा, यह अपनाई गई समुचित नीतियों का परिणाम होता है) और यह बेमेल होने की स्थिति में किसी भी अर्थव्यवस्था को या तो निम्न संवृद्धि (उच्च बेरोज़गारी स्तरों के साथ) के परिणामों का सामना करना पड़ेगा या फिर एक 'बेरोज़गारी युक्त संवृद्धि' की स्थिति का (आय में वृद्धि पर्याप्त रोज़गार सृजन के साथ नहीं होगी)। उक्त दोनों ही स्थितियाँ, चूँकि ये वांछित समग्र समष्टि अर्थशास्त्रीय स्थिरता के साथ जुड़ा है, अर्थव्यवस्था के लिए अस्वास्थ्यकर होती हैं। इस पृष्ठभूमि के साथ ही प्रस्तुत इकाई में रोज़गार एवं बेरोज़गारी संबंधी संकल्पनाओं एवं मुद्दों पर चर्चा की गई है, जो कि भारत जैसी किसी भी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था हेतु अनुप्रयोज्य होंगे। विशेष रूप से, इसमें उनके मापन एवं अपनाई गई रोज़गार नीतियों संबंधी विषयों पर चर्चा है। इन दो पहलुओं के अलावा, हम 'अनौपचारिक अर्थव्यवस्था' की संकल्पना के विषय में भी पढ़ेंगे और उसके आलोक में ग़रीबों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों को सुदृढ़ किए जाने का महत्त्व भी जानेंगे।

10.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

इस पाठ्यक्रम की इकाई 3 में हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि भारत का 48.9 प्रतिशत कार्यबल आज भी कृषि पर निर्भर है। वर्ष 2000 में यद्यपि यह प्रतिशतता 60 प्रतिशत के काफ़ी ऊँचे स्तर से नीचे आई, यह हमारी अर्थव्यवस्था के स्वरूप को 'कृषिक' के रूप निरूपित करने के लिए अभी भी पर्याप्त उच्च स्तर पर ही है। ऐसी स्थिति में, ऐसे 'कृषि श्रमिकों' का बड़ा भाग, जो अपने भरण-पोषण के लिए दिहाड़ी मज़दूरी वाले रोज़गार पर निर्भर है, वैकल्पिक रोज़गार प्रदान किए जाने की अपेक्षा करता है, ताकि ग़ैर-कृषि मौसम में भी वे अपना भरण-पोषण कर सकें। वर्ष 1951-2011 की अवधि में 'कुल कृषि कर्मियों के प्रति कृषि श्रमों' का अनुपात 28 प्रतिशत से बढ़कर 55 प्रतिशत हो गया। इस संदर्भ में, यह समझना ज़रूरी है कि 'रोज़गार' किस प्रकार परिभाषित किया जाता है और किस प्रकार मापा जाता है।

10.2.1 रोज़गार

किसी भी 'कृषि श्रमिक' अथवा 'काम की तलाश में लगे' व्यक्ति (चाहे ग्रामीण क्षेत्र में हो या शहरी क्षेत्र में), की रोज़गार स्थिति का एक पारिभाषिक प्राधार द्वारा मूल्यांकन किया जाना आवश्यक होता है, जो कि उसका वर्गीकरण दैनिक आधार पर 'कर्मचारी' अथवा 'ग़ैर.कर्मचारी' श्रेणियों में किए जाने की अनुमति देता है। ऐसा इसलिए है कि ये कर्मचारी संभवतः हर रोज़ काम न पा सकें और चूँकि वे अपनी दैनिक आय पर ही निर्भर हैं, उन्हें काम ढूँढ़ते रहने की विवशता होती है। दूसरे शब्दों में, उनका रोज़गार 'सवेतन अवकाश' (जैसा कि नियमित वेतन वाली नौकरियों में होता है) वाले किसी 'नियमित आधार' पर नहीं होता और इसलिए उनके लिए प्रतिदिन एक काम की तलाश का दिन होता है। स्पष्ट रूप से, इस प्रकार की दैनिक रोज़गार प्रस्थिति अथवा इसकी संपूरक बेरोज़गारी प्रस्थिति मापने हेतु एक वर्गीकृत्य प्राधार को विभिन्न संदर्भ अवधियों पर आधारित करना पड़ता है ताकि लोगों की विभिन्न रोज़गार प्रस्थितियों को समझा जा सके। भारत में, इस प्रकार के 'रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण' (EUSs) वर्ष 1972-73 से पाँच-पाँच वर्ष बाद राष्ट्रीय संदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा निरंतर करवाए जा रहे हैं। ये सर्वेक्षण इसी कारण 'पंचवार्षिक रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण' भी कहलाते हैं। ये सर्वेक्षण चार प्रकार के दृष्टिकोण अपनाते हैं; यथा (i) सामान्य प्रस्थिति (US) दृष्टिकोण; (ii) सामान्य मुख्य एवं गौण प्रस्थिति (UPSS) दृष्टिकोण; (iii) चालू साप्ताहिक प्रस्थिति (CWS) दृष्टिकोण; और (iv) चालू दैनिक प्रस्थिति (CDS) दृष्टिकोण। ये दृष्टिकोण दो 'संदर्भ अवधियों' से संबंध रखते हैं; यथा– 'एक वर्ष' की एक दीर्घावधि संदर्भ अवधि (US एवं UPSS दृष्टिकोणों के लिए) संदर्भ अवधियाँ अपनाने हेतु तर्क ये हैं– (i) दीर्घावधि रोज़गार प्रस्थिति का मूल्यांकन करना; और जहाँ ऐसा न होता हो; (ii) वहीं मूल्यांकन एक अल्पावधि परिप्रेक्ष्य में करना। तद्नुसार, दो सप्ताह-आधारित दृष्टिकोण पूर्ववर्ती दो, यथा US एवं UPSS दृष्टिकोणों की तुलना में 'दीर्घकालिक' रोज़गार अथवा बेरोज़गारी की स्थिति के विस्तार का मूल्यांकन करने हेतु एक आधार प्रदान करता है, जो कि एक अपेक्षाकृत उच्चतर/बेहतर रोज़गार प्रस्थिति को इंगित करता है।

सामान्य प्रस्थिति (US) दृष्टिकोण के अंतर्गत, यदि किसी व्यक्ति की रिपोर्ट के अनुसार वह संदर्भ वर्ष के अधिकांश भाग में किसी एक मुख्य क्रियाकलाप में अथवा 183 दिन या अधिक रोज़गार प्राप्त रहा हो तो उसे नियोजित माना जाता है। यदि कोई उत्तरदाता इस खंड में न आता हो तो उसकी प्रस्थिति 'सामान्य मुख्य एवं गौण' (UPSS) दृष्टिकोण से निर्धारित की जाती है। इसके अंतर्गत, किसी एक क्रियाकलाप (मुख्य क्रियाकलाप) में संलिप्त रहने का उसका मुख्य समय सर्वप्रथम निर्धारित किया जाता है और फिर आगे उसका द्वितीयक क्रियाकलाप, यथा गौण क्रियाकलाप आता है जिसमें वह अधिकतम समय कार्यरत रहा हो। गौण क्रियाकलाप वह है जिसमें वह कम से कम 30 दिन कार्यरत रहा हो। इस प्रकार, तीन संदर्भ अवधियों (यथा, एक वर्ष, एक सप्ताह और संदर्भ सप्ताह के प्रत्येक दिन) के आधार पर क्रियाकलाप प्रस्थिति के तीन भिन्न-भिन्न मापदंड प्राप्त होते हैं। एक वर्ष की संदर्भ अवधि के आधार पर निर्धारित क्रियाकलाप प्रस्थिति को व्यक्ति की सामान्य क्रियाकलाप प्रस्थिति (US) कहते हैं; वह जो एक सप्ताह की संदर्भ अवधि के आधार पर निर्धारित होती है, व्यक्ति की चालू साप्ताहिक प्रस्थिति (CWS) कहलाती है; और संदर्भ सप्ताह के दौरान प्रतिदिन संलग्नता के आधार पर निर्धारित क्रियाकलाप प्रस्थिति उस व्यक्ति की चालू दैनिक प्रस्थिति (CDS) कहलाती है। उक्त संगठन (NSSO) द्वारा अपनाए गए इस

दृष्टिकोण के विपरीत, दशकीय जनगणनाएँ कर्मचारियों को 'मुख्य कर्मचारी' अथवा 'सीमांत कर्मचारी' के रूप में वर्गीकृत करती हैं, जो कि इस आधार पर होता है कि व्यक्ति वर्ष के 183 दिनों से अधिक काम कर रहा था अथवा नहीं। जनगणना इस दिशा में आगे कोई पड़ताल नहीं करती और इसलिए कर्मचारियों संबंधी इसके अनुमान उक्त संगठन (NSSO) के सामान्य क्रियाकलाप प्रस्थिति (US) दृष्टिकोण से तुल्य होते हैं। यद्यपि, रोज़गार के मौसमी स्वरूप को इंगित करने के लिए, किसी ग्रामीण कृषि श्रमिक का विशिष्ट उदाहरण उपर्युक्त विवरण में चुना जाता है, वर्गीकृत्य प्राधार ग्रामीण.शहरी अंतर के एक छोर से दूसरे छोर तक एकसमान रूप से प्रयोग में लाया जाता है ताकि उस दिन-ब-दिन रोज़गार प्रस्थिति का आकलन किया जा सके जिस पर अपनी दैनिक आय हेतु बड़ी संख्या में लोग निर्भर करते हों। यह वर्गीकृत्य प्राधार आगे 'बेरोज़गार प्रस्थिति' को सहकालिक रूप से दर्ज़ किए जाने की अपेक्षा रखता है जैसा कि नीचे बताया गया है।

10.2.2 बेरोज़गारी

रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण (EUS) 'श्रम बल' सर्वेक्षण भी कहलाते हैं। शब्द युग्म 'श्रम बल' में 'नियोजित' और 'अनियोजित' दोनों आते हैं। परवर्ती अर्थात् अनियोजित (बेरोज़गार) में वे आते हैं जो रोज़गार की तलाश में हों और इसीलिए काम के लिए उपलब्ध हों। दूसरे शब्दों में, इसमें वे नहीं आते जो स्वैच्छिक रूप से काम के लिए इच्छुक न हों। सभी चार दृष्टिकोणों अर्थात् US, UPSS, CWS और CDS में उत्तरदाताओं को सर्वप्रथम 'श्रमबल में शामिल' और 'श्रमबल से बाहर' में वर्गीकृत किया जाता है। 'श्रमबल से बाहर' में आते हैं– छात्र, किरायाजीवी, पेंशनभोगी, प्रेषित रुपयों के ग्राही, भिखारी, अशक्त अथवा विकलांग व्यक्ति, अल्पायु व्यक्ति अर्थात् बच्चे तथा अस्थायी श्रमिक जो रुग्णता के कारण कार्यरत नहीं हैं। इस दृष्टिकोण से, व्यतीत समय मापदंड के अलावा, आय की प्राप्ति (नकद अथवा वस्तु-विनियम अथवा सिद्धांततः), चाहे स्पष्ट रूप से प्राप्त हो या न हो, अव्यक्त रूप से 'कर्मचारी' के रूप में किसी भी व्यक्ति को वर्गीकृत करने के लिए ध्यान में रखी जाती है। इस प्रकार वर्गीकृत कर्मचारी आर्थिक रूप से सक्रिय व्यक्ति होता है। उक्त सर्वेक्षण (EUSs) कर्मचारियों के चार वृहद् समूहों के लिए 'श्रमबल' के व्यापक अनुमान प्रदान करते हैं, जो कि निम्नवत् हैं –

- केवल सामान्य मुख्य क्रियाकलाप पर विचार करते हुए 'सामान्य प्रस्थिति' के अनुसार श्रमबल में व्यक्ति संख्या (इसलिए इन्हें UPS कर्मचारियों की संज्ञा भी दी जाती है);
- 30 दिनों से अधिक तक सर्वप्रथम 'प्राथमिक क्रियाकलाप' और फिर उनके 'गौण क्रियाकलाप' पर विचार करते हुए 'सामान्य प्रस्थिति' के अनुसार श्रमबल में व्यक्ति संख्या (UPSS कर्मचारियों के नाम से उल्लिखित);
- CWS दृष्टिकोण के अनुसार, श्रमबल में व्यक्ति संख्या; और
- CDS दृष्टिकोण के अनुसार श्रमबल में 'व्यक्ति दिवस' की संख्या।

इस प्रकार, US और UPSS दृष्टिकोणों के अंतर्गत, क्रियाकलाप प्रस्थितियाँ 'अधिकांश समय' और 'प्राथमिकता समय' कसौटी पर रखकर निर्धारित की जाती हैं, यथा US एवं UPSS के तहत 'मुख्य क्रियाकलाप' हेतु 'अधिकांश समय निकष' प्रयोग किया

जाता है और UPSS के तहत 'गौण क्रियाकलाप' हेतु 'प्राथमिकता समय निकष' प्रयोग किया जाता है। इस लिहाज से, US दृष्टिकोण को UPS (सामान्य मुख्य प्रस्थिति) भी कहा जाता है। CWS और CDS दृष्टिकोणों के लिए, विचारार्थ समयावधि के लघुतर असर के कारण, केवल 'प्राथमिकता निकष' ही अपनाया जाता है।

रोज़गार नियोजन के उद्देश्य से, श्रम बल में 'संवृद्धि' पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। एक अवधि से दूसरी अवधि में बेरोज़गारी के प्रेषण को नगण्य मानते हुए, बेरोज़गारी तब सामने आती है जब 'श्रमबल की वृद्धि दर' 'रोज़गार में वृद्धि दर' से अधिक होती है। भारत में श्रमबल वर्ष 2004-05 में 46-92 करोड़ से वर्ष 2009-10 में आंशिक रूप से कम होकर 46.88 करोड़ रह गया (EUS हेतु NSSO के दो प्रमुख दौर, यथा 61वाँ और 66वाँ दौर जिनके लिए आँकड़े वर्तमान में उपलब्ध हैं)। ध्यान देने की बात है कि दशमलव पश्चात् एक अंक हटाकर शून्यांत करने पर उपर्युक्त अवधि में श्रमबल में लगी व्यक्ति संख्या लगभग बराबर, यथा 46.9 करोड़ ही रही। बहरहाल, बेरोज़गार व्यक्तियों की संख्या वर्ष 2005 में 1.13 करोड़ से घटकर वर्ष 2010 में मात्र 98 लाख ही रह गई। परिणामतः, बेरोज़गारी की दर (श्रम बल के प्रतिशत के रूप में व्यक्त बेरोज़गार वर्ग) वर्ष 2005 में 2.4 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2010 में 2.1 प्रतिशत रह गई।

इस प्रकार, बेरोज़गारी एक ऐसी दृश्य घटना है जिसमें उपलब्धता के अभाव की वजह से 'किसी ज्ञात वेतन दर पर उन लोगों को काम नहीं मिलता जो काम करना चाहते हैं'। यह अनेक रूपों में दृष्टिगत होती है, जैसे – संरचनात्मक, घर्षणात्मक, चक्रीय, ऋतुनिष्ठ, आदि। संरचनात्मक बेरोज़गारी तब दृष्टिगत होती है जब काम हेतु इच्छुक लोगों को नौकरियाँ उपलब्ध होती हैं परंतु वे नौकरी करने के लिए अर्हता नहीं रखते। कौशलों में विसंगति है जो 'शिक्षा व्यवस्था में अपर्याप्तताओं' और/अथवा अनुपयुक्त प्रौद्योगिकी के प्रयोग से उत्पन्न होती है (जैसे पूँजी-गहन तकनीकें)। घर्षणात्मक बेरोज़गारी आर्थिक परिवर्तन की अवधियों में उत्पन्न होती है, जैसे फर्मों का बंद हो जाना, फर्म के भीतर उत्पादन तकनीकों में बदलाव, आदि। चक्रीय बेरोज़गारी आर्थिक क्रियाकलाप में व्यापार चक्र से जुड़ी है। ऋतु-निष्ठ अर्थात् मौसमी बेरोज़गारी समय-समय पर माँग एवं आपूर्ति दशाओं में उतार-चढ़ाव की ओर संकेत करती है (उदाहरणार्थ, कृषि में रबी-पश्चात्, खरीफ-पूर्व कालावधि। कृषिक अर्थव्यवस्थाओं में बेरोज़गारी का एक प्रकार सामान्यतः देखा जाता है, जो है– प्रच्छन्न बेरोज़गारी। इसका अर्थ है कि लोगों को रोज़गार में लगाया तो जा रहा है मगर निम्न उत्पादकता लाभ के साथ। स्थूलतः, इसीलिए, भारत में बेरोज़गारी दो प्रकार से वर्गीकृत की जा सकती है– (i) ग्रामीण बेरोज़गारी जो कि प्रकृति में ऋतुनिष्ठ और प्रच्छन्न अल्प-रोज़गार होती है, तथा (ii) शहरी बेरोज़गारी जो कि प्रकृति में संरचनात्मक होती है।

10.2.3 कार्यबल भागीदारी दर एवं श्रमबल भागीदारी दर

किसी भी देश में कार्यबल भागीदारी दर (WFPR) कुल जनसंख्या के प्रति कार्यरत जनसंख्या के अनुपात के रूप में निरूपित की जाती है। यह, इसीलिए, वैकल्पिक रूप से 'कर्मचारी जनसंख्या अनुपात' (WPR) भी कही जाती है। श्रम बल भागीदारी दर (LFPR), दूसरी ओर, कुल जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में व्यक्त 16-64 आयु-वर्ग में 'कार्यरत तथा कार्याकांक्षी जनसंख्या' के रूप में परिभाषित की जाती है। इसे प्रायः NSSO की रिपोर्टों में 'नियोजित एवं अनियोजित' व्यक्ति संख्या प्रति 1000 व्यक्ति के रूप में व्यक्त किया जाता है। आप देखेंगे कि ये दरें इस आधार पर भिन्न-भिन्न होती

हैं कि हम कर्मचारियों के किस वर्ग पर विचार कर रहे हैं, यथा– US अथवा UPSS अथवा CWS अथवा CDS। भारत के लिए, वर्ष 2015-16 में 'कुल व्यक्ति संख्या' (यथा, स्त्री व पुरुष जोड़कर) हेतु सामान्य मुख्य प्रस्थिति (UPS) द्वारा LFPR 50-3 थी। लिंगभेद के अनुसार, पुरुषों के लिए, यह 75 प्रतिशत थी और स्त्रियों के लिए यही 24 प्रतिशत रही; यथा– स्त्रियों के मुकाबले पुरुषों की श्रम बल भागीदारी तीन गुना से भी अधिक थी। 'कुल व्यक्ति संख्या' हेतु WFPR 48 रही (पुरुषों के लिए 72 प्रतिशत और स्त्रियों के लिए 22 प्रतिशत)। बेरोज़गारी दर कुल के लिए 5 प्रतिशत रही (लिंगभेद के अनुसार, यह स्त्रियों के लिए 9 प्रतिशत और पुरुषों के लिए 4 प्रतिशत रही)। अतः, स्त्रियों के लिए पुरुषों की LFPR के एक-तिहाई से भी कम दर किसी वर्ग-विशेष की स्त्रियों के सम्मुख सामाजिक प्रतिबंधों की ओर इंगित करती है (चूँकि ऐसी स्त्रियाँ भी हो सकती हैं जिन्होंने स्वेच्छा से काम न करना चुना हो)। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए बेरोज़गारी दर दो गुना से भी अधिक दर्ज की गई। यह भी श्रम बाज़ार की चुनौतियों की ओर इंगित करती है। पुरुषों और स्त्रियों के बीच की विषमता वस्तुतः सुस्पष्ट है जिसके लिए लिंग भेद की खाई को पाटे जाने की आवश्यकता है। सापेक्ष रूप से, स्त्रियों के लिए LFPR उत्तर.पूर्वी व दक्षिणी राज्यों में ऊँची और उत्तरी राज्यों में निम्न रही है।

बोध प्रश्न 1 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में दीजिए)।

1) कृषिक अर्थव्यवस्थाओं में, रोज़गार प्रस्थिति का मूल्यांकन करने के लिए ध्यान में रखे जाने हेतु किसी 'कर्मचारी' का विशिष्ट अभिलक्षण क्या है?

.....

.....

.....

.....

2) वे चार दृष्टिकोण क्या हैं जिनके आधार पर राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण करवाए जाते हैं? इन दृष्टिकोणों के पीछे क्या तर्काधार है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) 'श्रम बल' को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है? 'बेरोज़गारी दर' को किस प्रकार आकलित किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

4) वर्ष 2004.05 के श्रम बल सर्वेक्षण में नियोजित एवं अनियोजित वर्ग की संख्या क्रमशः 41.5 करोड़ और 1.3 करोड़ सामने आई। बेरोज़गारी की दर क्या रही?

.....

.....

.....

.....

.....

5) सामान्य प्रस्थिति (US) और सामान्य मुख्य एवं गौण प्रस्थिति (UPSS) दृष्टिकोणों (संदर्भ अवधि एक ही होने की स्थिति में), के बीच अनिवार्य विभेद क्या होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

6) श्रमबल भागीदारी दर (LFPR) और कार्यबल भागीदारी दर (WFPR) के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। भारत में उक्त दर (LFPR) और बेरोज़गारी दरों के बीच सुस्पष्ट अंतर आप कैसे व्यक्त करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

7) ग्रामीण एवं शहरी बेरोज़गारी के बीच मोटे तौर पर अंतर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

10.3 रोज़गार नीतियाँ

अपनाई गई रोज़गार नीतियों को सभी प्रकार के वांछित रोज़गार प्राप्त कराने पर अभिलक्षित होना चाहिए (यथा, विभिन्न स्तरों पर अकुशल दिहाड़ी मज़दूरी वाला रोज़गार, अर्ध-कुशल व कुशल कर्मचारियों हेतु रोज़गार, उच्चतर कुशल एवं शिक्षित कर्मचारियों हेतु रोज़गार)। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति से ही भारत में अपनाई गई रोज़गार

नीतियों का कार्यक्षेत्र विस्तृत रहा है। यह दृष्टिकोण भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) के आरंभ से ही आगे अपनाई गई विभिन्न रोज़गार नीतियों व कार्यक्रमों के आग्रहों में दिखाई देता है। प्रथम, कुछ योजनाओं के प्रयास इस विश्वास के साथ अंकित किए गए कि समस्त आर्थिक संवृद्धि दर विभिन्न स्तरों पर वांछित रोज़गार का सृजन सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होगी। तद्नुसार, 1950 व 1960 के प्रथम दो दशकों के दौरान क्रियान्वित नीतियाँ ऐसे रोज़गार के उच्चतर स्तर सृजित करने की संभावना वाले क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करते प्रयासों की रही। दूसरे शब्दों में, अति दरिद्र कुटुंबों की मज़दूरी-रोज़गार आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए सामान्य अथवा समग्र आर्थिक संवृद्धि से प्रत्याशित अंतःस्रवण प्रभाव के कारण कोई भी विशिष्ट प्रयास क्रियान्वित नहीं किया गया। फिर भी, 1970 के उत्तरार्ध में, वर्ष 1978 में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) आरंभ होने के साथ ही, मज़दूरी-रोज़गार अवसरों द्वारा ग़रीबी के स्तर नीचे के कुटुंब/लोगों की सहायता करने हेतु विशिष्ट प्रयास शुरू किये गये। आने वाले दशकों में, अनेक विशिष्ट रोज़गार सृज़न कार्यक्रम (यथा, TRYSEM, RLEGP, DPAP आदि) लागू किए गए, ये प्रयास मुख्यतः मज़दूरी-रोज़गार के रास्ते खोलकर ग़रीबी से लड़ने हेतु आपूर्ति पक्ष के प्रत्युत्तर स्वरूप थे। इन कार्यक्रमों का लक्ष्य स्वयं-रोज़गार नवपरियोजनाएँ शुरू करने में सक्षम करने हेतु कौशल विकास भी रहा। बहरहाल, अनुभव के 50 से भी अधिक वर्षों बाद, ग़रीब कुटुंबों की स्थिति और भी अधिक गंभीर होती देखकर (खासकर, वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों के क्रियान्वयन पश्चात्), यह महसूस किया गया कि रोज़गार सृजन को एक माँग-प्रेरित प्रयास बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि संभावित कर्मचारी वर्ग किसी वर्ष में रोज़गार के दिनों की एक न्यूनतम संख्या हेतु प्रयास कर उसे प्राप्त कर सकें। इस आशय को वर्ष 2005 में एक अधिनियम (NREGA) का रूप दे दिया गया। अब हम दोनों विभिन्न अवधियों, यथा 1950 के दशक से 2000/2002 एवं 2000–उपरांत वर्षों में की गई विभिन्न रोज़गार विषयक नीति पहलों का विहंगावलोकन करेंगे।

10.3.1 1950 के दशक से वर्ष 2002 तक

1950 के दशक के पूर्वार्ध में, बेरोज़गारी को एक ऐसी समस्या के रूप में मान्यता मिली जिसको तीव्रतर आर्थिक संवृद्धि की उपलब्धि पर ध्यान देते हुए काफ़ी हद तक दूर किया जा सकता है। विशेष ध्यान लघु उद्योग जैसे श्रम-गहन क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिए जाने पर दिया गया। बेरोज़गारी के पिछले बोझ के आकलित विस्तार पर कड़ी नज़र रखी गई। उदाहरण के लिए, द्वितीय पंचवर्षीय (1957-62) के अंत तक अनुमानित बेरोज़गारी 50 लाख बताई गई, जिसमें श्रमबल में प्रतिवर्ष 15 से 20 लाख तक नए नाम जुड़ जाना प्रत्याशित था। इतनी बड़ी संख्या में लोगों की रोज़गार संबंधी ज़रूरत को पूरा करने के लिए यह कल्पना की गई कि सकल घरेलू उत्पाद में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रोज़गार सृजन हेतु पर्याप्त होगा ताकि श्रम बल का पिछला बोझ और उसमें ताज़ा वृद्धि दोनों का ध्यान रखा जा सके। बाद के वर्षों में विकासमान कृषिक समुदाय की मदद हेतु चौथी योजना (1969-74) में दो विशेष अभिकरण स्थापित किए गए– (i) लघु कृषक विकास अभिकरण (SFDA), और (ii) सीमांत कृषक एवं कृषिक श्रम विकास अभिकरण (MFALDA)। परंतु, रोज़गार सृजन पर आग्रह दबाव और सकल घरेलू उत्पाद में लक्षित संवृद्धि दरों की उपलब्धि के बावजूद, भारत 1960 और 1970 के दशकों में औसत रूप से 3.5 प्रतिशत की संवृद्धि दर ही प्राप्त कर सका। जबकि रोज़गार 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत से बढ़ा, श्रम बल 2.5 प्रतिशत की तीव्रतर दर से बढ़ा। परिणामतः, वर्ष 1973-74 तक बेरोज़गारों की

संख्या बढ़कर 1 करोड़ हो गई। वांछित पुनःदिशा निर्धारण के रूप में, पाँचवीं योजना (1974-79) में विशेष 'ग़रीबी हटाओ' और रोज़गार कार्यक्रम शुरू किए गए। उक्त अभिकरणों (SFDS व FALDA) के दो कार्यक्रमों को वर्ष 1978 में मिलाकर एक व्यापक कार्यक्रम 'समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (IRDP) के नाम से चलाया गया। एक 'राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (NREP) वर्ष 1980 में शुरू किया गया, जिसके दो उद्देश्य थे– (i) ग्रामीण ग़रीबों को मज़दूरी आय प्रदान करना; और (ii) ग्रामीण अवसंरचना निर्माण करना। इसके पश्चात्, वर्ष 1983 में एक अन्य कार्यक्रम शुरू किया गया, जिसे नाम दिया गया– 'ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम' (RLEGP)। इसका उद्देश्य था– वर्ष 1983 में चुने हुए पिछड़े इलाकों में रोज़गार के 100 दिन प्रदान करना। यद्यपि इस प्रकार के कार्यक्रम किसी भी वर्ष में 'रोज़गार के व्यक्ति दिवसों' की यथेष्ट संख्या उत्पन्न करने में सक्षम थे, इनसे देश में बेरोज़गारी की समग्र व्यापकता को कम करने में मदद नहीं मिली। परिणामतः, बेरोज़गारी की व्यापकता निरंतर बढ़ती ही गई, जिसके कारण सातवीं योजना (1985.90) की विकास रणनीति में रोज़गार को केंद्र में रखा गया। इन सभी दबावों और प्रयासों के बाद भी, 1980 के दशक में सकल घरेलू उत्पाद में 5.5 प्रतिशत की एक अपेक्षाकृत तीव्रतर औसत वार्षिक संवृद्धि के बावजूद रोज़गार वृद्धि तो मात्र 1.8 प्रतिशत के निम्न स्तर पर ही रही। इस प्रकार, अस्सी के दशकांत तक बेरोज़गारों की संख्या बढ़कर 1.45 करोड़ और वर्ष 1991-92 तक कुछ और बढ़कर 1.7 करोड़ आँकी गई।

1990 के दशकारांभ में, विशेष रूप से वर्ष 1991 में शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के संभावित प्रभाव को शामिल करके, रोज़गार एवं बेरोज़गारी के रुझानों का एक विस्तृत मूल्यांकन किया गया। यह मूल्यांकन आठवीं योजना (1992-97) की रोज़गार रणनीति का आधार बन गया। खुले आम बेरोज़गार और गंभीर रूप से अल्प-नियोजित, दोनों को ध्यान में रखते हुए और 1992-91 के दौरान लगभग 3.5 करोड़, और वर्ष 1997-2002 के दौरान 3.6 करोड़ के श्रमबल को अतिरिक्त रूप से शामिल करते हुए, नौवीं योजना (1997-2002) ने रोज़गार में 2.6 से 2.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हासिल करने का लक्ष्य निर्धारित किया। वर्ष 2002 तक 'सभी के लिए रोज़गार' का लक्ष्य हासिल करने के लिहाज से निर्धारित यह लक्ष्य इन प्रयासों के माध्यम से योजना रणनीति में रखा गया था : (i) समस्त एवं क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ; (ii) कृषि संबंधी स्थानिक एवं उप-क्षेत्रीय विविधता साधित अभिलक्षित नीतियाँ एवं कार्यक्रम; (iii) ऊसर भूमि का विकास; (iv) ग्रामीण ग़ैर-फार्म क्षेत्र के विकास हेतु नीति प्राधार द्वारा समर्थन; (v) लघु एवं विकेंद्रीकृत औद्योगिक क्षेत्र; (vi) अनौपचारिक एवं सेवा-क्षेत्रों की तीव्रतर वृद्धि; आदि। इन प्रयासों के बावजूद, (हालाँकि सकल घरेलू उत्पाद द्वारा मापित आर्थिक संवृद्धि ने प्रभावशाली परिणाम दर्शाए) 1994.2000 के दौरान GDP वृद्धि बढ़कर 6.7 प्रतिशत हो गई, रोज़गार वृद्धि वर्ष 1983-93 के दौरान मात्र हासिल 2.7 प्रतिशत से घटकर वर्ष 1994.2000 के दौरान 1.1 प्रतिशत रह गई। दूसरे शब्दों में, यह कल्पना कि एक उच्चतर संवृद्धि दर से तीव्रतर रोज़गार वृद्धि होगी, साकार नहीं हुई और संवृद्धि प्रक्रिया को एक 'रोज़गार रहित संवृद्धि' के रूप में पहचाना जाने लगा, यथा निम्नतम रोज़गार अंश के साथ उच्चतर सकल-घरेलू-उत्पाद संवृद्धि। यह संवृद्धि रोज़गार लोचशीलता में 0.52 से 0.16 की गिरावट द्वारा अंकित की गई।

10.3.2 वर्ष 2002 के उपरांत

अपने क्रियान्वयन के 20 वर्ष पश्चात्, वर्ष 1999 में उक्त कार्यक्रम (IRDP) के स्थान पर स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना (SGSY) लाई गई। उक्त कार्यक्रम (IRDP)

की मूल्यांकन रिपोर्टों के अनुसार, इस कार्यक्रम ने अधिकांश मामलों में आय में वृद्धि की ओर प्रवृत्त किया था, जिससे लगभग 15 प्रतिशत सहायता प्रेरित कुटुंब ग़रीबी की रेखा वाले आय स्तर को पार करने में सक्षम हुए थे। इसके बावजूद, यह महसूस किया गया कि देश में दिन-ब-दिन रोज़गार तलाश करने वालों की व्यथा कम करने के लिए एक पुनर्नवीकृत प्रयास की आवश्यकता है। इसने देश के चुने हुए अपेक्षाकृत ग़रीब ज़िलों में प्रत्येक कुटुंब को एक वर्ष में रोज़गार के 100 दिन तक काम सुनिश्चित करने के लिए वर्ष 2005 में पारित राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (NREGA) वर्ष 2000 के उपरांत की प्रमुख पहल रहा। वर्ष 2004 में, असंगठित अनौपचारिक क्षेत्र में उद्यमों की समस्याओं की जाँच करने और उच्च रोज़गार संभावना वाले इस क्षेत्र की वृद्धि क्षमता को सुदृढ़ करने हेतु नीतियों एवं कार्यक्रम अभिकल्प करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग गठित किया गया। दोनों ही कदम विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण पहल थे, क्योंकि कार्यबल का अधिकांश भाग अर्थव्यवस्था के 'असंगठित' अथवा 'अनौपचारिक' क्षेत्र में ही है और बेहद ग़रीब लोग, जो इस क्षेत्र से ही संबंध रखते हैं, दिहाड़ी-आधार पर निश्चित रोज़गार चाहते हैं।

वर्ष 2000 के बाद से रोज़गार में रुझान मिले.जुले रहे हैं। उदाहरण के लिए, उक्त संगठन (NSSO) के 61वें दौर पर आधारित आकलन बताते हैं कि वर्ष 2000-05 के दौरान रोज़गार की वृद्धि में सुधार हुआ। वर्ष 2000-2005 की अवधि में, रोज़गार में वृद्धि दर 2.85 प्रतिशत प्रति वर्ष आकलित की गई (जो कि वर्ष 1994-2000 की अविध में 1 प्रतिशत से काफ़ी ऊपर थी)। किंतु, रोज़गार की स्थिति तो लघु समयावधि में भी व्यापक रूप से घटती-बढ़ती रहती है। इस कारण से, इसका लंबे समयांतरालों के एक छोर से दूसरे छोर तक अध्ययन करना आवश्यक है (10+ वर्ष)। किसी लंबी समयावधि के एक छोर से दूसरे छोर तक इस प्रकार का मूल्यांकन उक्त संगठन (NSSO) के विभिन्न पंचवर्षीय दौरों में करना पड़ता है क्योंकि यही एकमात्र ऐसा स्रोत है जो समस्त अर्थव्यवस्था के संगठित एवं असंगठित दोनों ही क्षेत्रों में विस्तारित है। इस कारण से, वर्ष 1983-2010 की अवधि में 3 दीर्घावधि और 3 ही अल्पावधि के आँकड़े तालिका 10.1 में प्रस्तुत किए गए हैं –

तालिका 10.1 : रोज़गार एवं GDP में वृद्धि दर (%)

अवधि (दीर्घ/अल्प)	रोज़गार	GDP	EE
1983-1993 (दीर्घ)	2.0	5.0	0.40
1994-2005 (दीर्घ)	1.8	6.3	0.29
1999-2010 (दीर्घ)	1.5	7.5	0.20
1988-1993 (अल्प)	2.4	–	–
1994-2000 (अल्प)	1.0	–	–
2005-2010 (अल्प)	0.2	9	0.02

सकल घरेलू उत्पाद में सदृश वृद्धि दरों के साथ सन्निहित, तीन उप-अवधियों हेतु इस प्रकार का दीर्घावधि मूल्यांकन दर्शाता है कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि दर का वर्ष 1983-2010 की दीर्घावधि में रोज़गार वृद्धि दर के साथ प्रतिलोम संबंध रहा है। रोज़गार की लोच, जो कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि दर और रोज़गार में वृद्धि दर के अनुपात के रूप में मापी जाती है, भी संगतिपूर्वक रही है। इसमें रुझान वर्ष 1983-

2010 की अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था में रोज़गाररहित संवृद्धि को सिद्ध करता है। अल्पावधि तुलनात्मक वर्णन अल्पावधि में परिवर्तनों के प्रति संवृद्धि दर की संवेदनशीलता को इंगित करता है जो कि दीर्घावधि हेतु आँकड़ों पर विचार करते समय औसत स्तर पर आ जाता है।

वर्ष-दर-वर्ष अपनी उपलब्धि में कुछ अंतर के साथ, उक्त अधिनियम (मनरेगा) के प्रयासों के परिणाम दर्शाते हैं कि यह अधिनियम भागीदार कुटुंबों को लगभग 50 दिन की औसत संख्या में काम दिलवाने में सफल रहा है, जो कि 100 दिन के अभिकल्पिक अधिकतम प्रावधान से काफ़ी कम है। किंतु, इस कार्यक्रम ने अपने क्रियान्वयन के पास पड़ोस के क्षेत्रों में औसत मज़दूरी को बढ़ाने में भी योगदान दिया है। मनरेगा (GREGA – उक्त अधिनियम का ही नया नाम जो वर्ष 2009 से लागू हुआ) की समीक्षा में अनेक कमज़ोरियाँ बतलाई गईं, जैसे– (i) माँग पर कार्य का शून्य-प्रावधान; (ii) कार्यसूची के आधार पर मज़दूरी आकलित करने में पारदर्शिता का अभाव; (iii) न्यूनतम मज़दूरी का भुगतान नहीं होना; (iv) नियत 15 कार्यदिवसों के भीतर मज़दूरी का भुगतान नहीं होना; (v) निषेध के बावजूद ठेकेदारों का प्रयोग; (vi) रोज़गार.भत्ता का भुगतान नहीं होना; (vii) कार्यस्थल पर सुविधाओं का प्रावधान नहीं होना; आदि। हक़दारियाँ 'बेचने' और नामावलियों में 'हेराफेरी' के मामले भी सामने आए है। इन सब घटनाओं के बावजूद, इस कार्यक्रम ने निम्नलिखित क्षेत्रों में अनेक परिसम्पत्तियों के निर्माण में मदद की है– (i) जल संरक्षण; (ii) सिंचाई; (iii) सड़क संयोजना; (iv) भूमि विकास; व अन्य। उपर्युक्त में से, जल संरक्षण कार्यों ने वर्ष 2007-11 की पाँच वर्षीय अवधि में 50 प्रतिशत से भी अधिक भौतिक उपलब्धियों का हिसाब दिया। यह इसीलिए स्वीकार किया जा सकता है कि ग्राम परिषदों (जिनको इसके क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी माना जाता है) की निकृष्ट प्रबंधन क्षमता के बावजूद मनरेगा के कार्यक्रम अतीत में इसी प्रकार के कार्यक्रमों से बेहतर क्रियान्वित किए जा रहे हैं। वर्ष 2011 में, उक्त योजना (SGSY) के एक पुनर्संरचित संस्करण के रूप में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) शुरू किया गया।

10.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

ऊपर भाग 10.3 में दिया गया रोज़गार सृजन का वृत्तांत प्रमुखतः ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही ग़रीबों की मज़दूरी रोज़गार संबंधी आवश्यकताओं को समझता है। ये आवश्यकताएँ केवल रोज़गार सृजन संबंधी समस्या के परिमाणात्मक आयाम की ओर ही संकेत करती हैं। इससे इतर, एक गुणात्मक आयाम भी होता है, जिस लिहाज़ से देश को वहाँ पहुँचने के लिए एक लंबा सफ़र तय करना है जिसे 'मर्यादित कार्य' स्तर कहा जाता है। इस लिहाज़ से एक भेद 'मज़दूरी' शब्द को लेकर किया जा सकता है जो कि 'आकस्मिक कर्मचारियों' के लिए मज़दूरी रोज़गार कार्यक्रमों में प्रयोग किया जाता है, और दूसरा 'वेतन' जो कि 'नियमित कर्मचारियों' को एक निश्चित तरीके से दिया जाता है। इससे वह द्विभाजन भी प्रकाश में आता है जो भारत जैसे कृषिक एवं विकासशील देशों के श्रम बाज़ारों में विद्यमान होता है। मज़दूरी कमाने वाले, एक ऐसे क्षेत्र में जीवन-निर्वाह करते हैं जिसे 'अनौपचारिक क्षेत्र' कहा जाता है। उनकी रोज़गार दशाएँ किसी भी ऐसे अधिनियम अथवा कानून से नियंत्रित नहीं होती हैं जो रुग्णता अथवा रोज़गारोपरांत वर्षों, यथा वृद्धावस्था, के दिनों में उनकी आय को संरक्षित करे। दूसरी ओर, संपूरक औपचारिक अर्थात् संगठित क्षेत्र में कर्मचारियों का एक छोटा-सा भाग अनेक ऐसे विधिक प्रावधानों के अंतर्गत लाया गया है। कर्मचारियों के संगठित

अथवा औपचारिक क्षेत्र को इस रूप में परिभाषित किया जाता है– 'वह कर्मचारी वर्ग जो 10 कर्मचारियों से अधिक नियोजित करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों अथवा निजी क्षेत्र के संगठनों में कार्यरत हो।' जब अर्थव्यवस्था विकसित होती है तो अधिकाधिक अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मचारी औपचारिक क्षेत्र में अवशोषित कर लिए जाते हैं, या फिर अर्थव्यवस्था इस प्रकार विस्तार कर सकती है कि न सिर्फ़ अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों की संख्या बढ़े, बल्कि औपचारिक क्षेत्र के कुछ कर्मचारियों को 'अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों' में गिना जाने लगे। परवर्ती (यथा वेतन भोगी) का अर्थ है– सफ़ाई, सुरक्षा, अनुरक्षण सेवाओं आदि सरीखे कुछ अमहत्त्वपूर्ण कार्यों को ठेके पर उठाकर औपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों को एक अनौपचारिक आधार पर मेहनताना देकर रखने की दृश्यघटना। यह प्रक्रिया अर्थव्यवस्था के 'अनौपचारीकरण' के नाम से जानी गई है। 'औपचारिक एवं अनौपचारिक' (अथवा संगठित एवं असंगठित जैसा कि उन्हें भारत में पुकारा जाता है) का अनुपात भारत में एक लंबे समय तक 7 : 93 ही रहा। हाल ही में, प्रस्थिति में अनौपचारिक से औपचारिक तथा विपरीत भी, परिवर्तन की प्रक्रिया के साथ, औपचारिक एवं अनौपचारिक कर्मचारियों को 16 : 84 के रूप में दर्शाया जाता है। भारत में कर्मचारियों का एक अन्य प्रभावी वर्ग 'स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारियों' का है, जो कि अनौपचारिक कार्यबल का एक प्रमुख भाग बनते हैं। स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारियों की प्रस्थिति को 'आकस्मिक श्रमिक' से उत्तम परंतु 'नियमित मज़दूरों' अथवा 'कर्मचारियों' से निकृष्ट माना जाता है। भारत में बड़ी संख्या में स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारी स्वयं-खाता खेती-बाड़ी अथवा ग़ैर-खेती-बाड़ी क्षेत्र में लघु व्यवसाय में कार्यरत हैं। यह स्थिति अल्पावधि में भी परिवर्तन लाने वाली होती है। कुछ स्वरोज़गार प्राप्त कर्मचारी मात्र इतना ही अर्जित कर रहे हो सकते हैं कि वे दैनिक मज़दूरी आधार पर आकस्मिक नौकरियाँ चुन लेने को बाध्य हो सकते हैं। इन तीन प्रकार के कर्मचारियों, अर्थात् स्वरोज़गार प्राप्त, नियमित मज़दूरों व आकस्मिक श्रमिकों का वर्ष 1973-2010 की अवधि में परिवर्तनशील प्राधार निम्नलिखित तथ्य दर्शाता है– (i) नियमित कर्मचारियों का अनुपात इन 38 वर्षों की अवधि में 15.4 : से किंचित् ही बढ़कर 16.6 : हो गया है (यह एक 'गतिहीन अवस्था' ही रही है); (ii) 'आकस्मिक श्रमिक' का अनुपात अनुकूल अवधि में 23 प्रतिशत से बढ़कर 33 प्रतिशत हो गया है (इसका वर्णन अर्थव्यवस्था के अनौपचारीकरण के रूप में किया जाता है); और (iii) 'स्वरोज़गार प्राप्त' का अनुपात 61 प्रतिशत से घटकर 51 प्रतिशत पर आ गया है। 'स्वरोज़गार प्राप्त' कर्मचारियों द्वारा इसी अनुपात के एक सदृश्य ह्रास के प्रति 'आकस्मिक कर्मचारियों' के अंश की वृद्धि (10 प्रतिशत तक) सुझाव दिया गया है कि 'आकस्मिक कर्मचारियों की संख्या में शामिल होने के लिए निम्न आय के कारण स्वयं.खाता कर्मचारियों (स्वरोज़गारप्राप्त कर्मचारियों हेतु एक अन्य नाम) का बहिर्गमन' इंगित हुआ है। दूसरे शब्दों में, यह कुल मिलाकर रोज़गार की गुणवत्ता में अपकर्ष का ही सूचक है।

10.4.1 असंगठित कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा

असंगठित क्षेत्र में उद्यमों हेतु राष्ट्रीय आयोग (NCEUS) की सिफ़ारिशें मानते हुए, एक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, जिसका नाम था– 'असंगठित कर्मचारी सामाजिक सुरक्षा अधिनियम', वर्ष 2008 में पास किया गया। यह अधिनियम निम्नलिखित विषयों पर असंगठित कर्मचारियों हेतु उपयुक्त कल्याण योजनाओं के निरूपण को अनुबद्ध करता है– (i) इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना; (ii) राष्ट्रीय परिवार लाभ

योजना; (iii) जननी सुरक्षा योजना; (iv) आम आदमी बीमा योजना; (v) राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना; (vi) जनश्री बीमा योजना; (vii) अटल पेंशन योजना; और (viii) प्रधानमंत्री जीवन बीमा योजना।

बोध प्रश्न 2 (दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50–100 शब्दों में लिखें)।

1) भारत में रोज़गार की स्थिति सुधारने के लिए प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाया गया मूल दृष्टिकोण क्या था?

.....

.....

.....

.....

.....

2) किस वर्ष में विशेष रोज़गार सृजन एवं 'ग़रीबी हटाओ' कार्यक्रम लागू किए गए? इस कदम को उठाने हेतु क्या प्रेरणा थी?

.....

.....

.....

.....

.....

3) रोज़गार एवं बेरोज़गारी संबंधी समस्या से निपटने के लिए 1990 के दशक में कौन-से विशेष प्रयास किए गए? इससे क्या परिणाम साकार रूप में सामने आए?

.....

.....

.....

.....

.....

4) सरकार के प्रयासों में वर्ष 2000 के बाद से दिशा परिवर्तन दर्शाने वाली दो महत्त्वपूर्ण पहलें क्या थीं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) एक दीर्घावधि स्तर पर, भारत में रोज़गार योजना के कार्य निष्पादन का आप किस प्रकार वर्णन करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) वर्ष 1973-2010 के एक अपेक्षाकृत दीर्घकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था के 'अनौपचारीकरण' के लिहाज़ से क्या रुझान रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 सार-संक्षेप

भारत में रोज़गार की समस्या बड़ी संख्या में अकुशल कर्मचारियों से जुड़ी है जो आकस्मिक प्रकृति वाली दिहाड़ी मज़दूरी के काम मिलने पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार के काम प्रकृति में अनौपचारिक होते हैं और साल के कुछ दिन ही उपलब्ध होते हैं। उनकी जीवन-निर्वाह संबंधी आवश्यकता पूर्ति के लिए सरकार ने अनेक मज़दूरी रोज़गार कार्यक्रम चलाए हैं। वर्ष 1950-2000 के बीच, इन कार्यक्रमों ने 15 प्रतिशत सहायता प्राप्त कुटुंबों को ग़रीबी की रेखा से नीचे की प्रस्थिति से निकालने में सफलता प्राप्त की है। आपूर्ति पक्ष के उपाय स्वरूप लागू इन कार्यक्रमों को सीमित प्रभाव छोड़ने वाला ही माना गया और इस स्थिति से उबरने के लिए वर्ष 2005 में नरेगा (NREGA) का माँग-प्रेरित अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के तहत लागू कार्यक्रमों ने एक निश्चित संख्या तक ही नौकरियों या काम की उपलब्धता सुनिश्चित करने में योगादन दिया है, जो कि वस्तुतः इस अधिनियम द्वारा गारंटी दिए गए रोज़गार के 100 दिन से काफ़ी कम है। इसके और इस अधिनियम के क्रियान्वयन में पहचानी गई अन्य कमियों के बावजूद, इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाले कार्यक्रमों को इसके देशभर में क्रियान्वयन के क्षेत्रों में औसत मज़दूरी स्तरों को ऊपर उठाने के अलावा एक स्थिरता का भाव उत्पन्न करने का भी श्रेय दिया जाता है। सरकार ने असंगठित अथवा अनौपचारिक क्षेत्र में ऐसे कर्मचारियों की सहायतार्थ अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ भी लागू की हैं जो कि रोज़गार व आय असुरक्षाओं के प्रति अतिसंवेदनशील हैं। इस इकाई में हमने ग्रामीण क्षेत्रों में विशिष्टतः विद्यमान बेरोज़गारी और अल्प रोज़गारी की समस्या पर चर्चा की। शहरी इलाकों में यह समस्या संरचनात्मक बेरोज़गारी वाली है जो कि कौशलों में विसंगति से संबंध रखती है।

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Papola, T. S. (2008). Employment in India's Development Strategy, in S.K. Bhaumik (Ed.), Reforming Indian Agriculture: Towards Employment Generation and Poverty Alteration, Sage, New Delhi.

2) Papola, T. S. (2008). Employment Challenge and Strategies in India, ILO, Asia-Pacific Working Paper Series, New Delhi. Pp 2-10.

3) Papola and Sahu (2012). Growth and Structure of Employment in India: Long Term and Post-Reform Performance and the Emerging Challenge, ISID, New Delhi. -

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) चूँकि उनका काम कोई नियमित प्रकृति का नहीं है, उनकी दिन-प्रतिदिन की स्ववृत्ति पर विचार किए जाने की आवश्यकता है।

2) US, UPSS, CWS व CDS रोज़गार की दीर्घावधि प्रस्थिति के साथ-साथ अल्पावधि प्रस्थिति का भी दर्शाते हैं।

3) श्रम बल को 'नियोजित जमा अनियोजित' के रूप में परिभाषित किया जाता है। बेरोज़गारी दर को फिर 'श्रमबल के प्रति अनियोजित' के प्रतिशत के रूप में आकलित किया जाता है।

4) $[(13(415 + 13) \times 100 = 3$ प्रतिशत।

5) US/UPS दृष्टिकोण के लिए 'अधिकांश समय निकष' प्रयोग किया जाता है। UPS दृष्टिकोण के लिए, 'अधिकांश समय निकष' पर आधारित मुख्य क्रियाकलाप और 'वरीयता समय' निकष पर आधारित गौण क्रियाकलाप दोनों प्रयोग किए जाते हैं।

6) दोनों के लिए हर कुल जनसंख्या ही है। अंश के लिए, WFPR हेतु यह कर्मचारियों की संख्या होगी और LFPR हेतु यह श्रम बल होगा।

7) ग्रामीण बेरोज़गारी मौसमी कारकों की वजह से प्रछन्न अथवा अल्प-रोज़गार होती है जबकि शहरी बेरोज़गारी कौशलों में विसंगति की वजह से संरचनात्मक होती है।

बोध प्रश्न 2

1) मूल दृष्टिकोण इस प्रत्याशा के साथ एक वृद्धि लक्ष्य तय करना था कि संवृद्धि के लाभ स्वतः ही रोज़गार सृजन में परिवर्तित होते रहेंगे।

2) वर्ष 1978 में IRDP की विधि से यह महसूस किया गया कि ग़रीब परिवारों पर केंद्रित एक विशेष प्रयास की आवश्यकता है क्योंकि प्रत्याशित रिसन प्रभाव दरअसल काम नहीं कर रहा था।

3) वर्ष 2002 तक 'सभी के लिए रोज़गार' का लक्ष्य प्राप्त करने का उद्देश्य लेकर इस प्रभाव को योजना रणनीति में आंतरीकृत कर देना था। तथापि, जब रोज़गार में लक्षित वृद्धि दर 2.6 से 2.8 प्रतिशत है, वर्ष 1994-2000 के दौरान वास्तविक उपलब्धि 1.1 प्रतिशत रही।

4) NCEUS की स्थापना तथा NREGA का अधिनियमन (10.3.2)।

5) वर्ष 1983-2010 के दौरान रोज़गार एवं GDP संवृद्धि दरों की तुलना दर्शाती है कि दो वृद्धि विवरण प्रतिलोमितः संबद्ध हैं।

6) स्थिति 93 : 7 से 84 : 16 तक महत्त्वपूर्ण रूप से बदली है। यद्यपि, इससे बेहतर औपचारीकरण प्रकट होता है, किंतु वास्तविकता में, 'आकस्मिक कर्मचारियों' के अनुपात में 23 से 33 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY